वक्तव्य ।

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! धार्मिक शिक्षाओं के विना सांसारिक शिक्षाएं परलोक की अर्थ साधक नहीं होतीं अतएव व्यावहारिक शिक्षाओं के साथ ही साथ यदि धार्मिक शिक्षाओं का भी भली प्रकार से प्रबन्ध होजाए तब विद्यार्थी गण सांसारिक और पारमार्थिक लाभ उठा सकते हैं जिस के कारण वे दोनों लोक में अपनी आत्मा के कल्याण करने में समर्थ हो जाते हैं।

फिर यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि जो जो शिक्षाएं बाल्यावस्था में बालकों के अन्तःकरण में प्रविष्ट हो जाती हैं वे प्रायः आयु भर अपने फल दिखाए विना नहीं रहतीं इसी लिये विद्वानों का मत है कि—सांसारिक (लौकिक) शिक्षाओं के साथ ही साथ धार्मिक शिक्षाओं का भी प्रचार किया जाए।

सो मैंने भी उक्त विद्वानों के मत का अनुकरण "जैन धर्म शिक्षावली" नामक पुस्तक के पांच विभाग कर पंचम श्रेणी तक लिखकर किया है. आनन्द का समय है कि-श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज ने उक्त पांचों विभागों को अपनी अपनी पाठशालाओं में स्थान प्रदान किया और अनेक बालक और बालिकाओं ने धार्मिक शिक्षाओं से जैन मत के पदार्थों को भली प्रकार से अवगत किया और कतिपय समाचार पत्रों ने भी उक्त शिक्षावली के पांचों विभागों को [illegible] उपयोगी बतलाया और अपनी [illegible] सम्मति भी प्रगट की [illegible] स्थानकवासी समाज की प्रत्येक पाठशाला में उक्त [illegible] भागों को अवश्यमेव [illegible] प्रदान [illegible] इसी कारण उक्त [illegible]वली के पांचों भाग पंचम वार मुद्रित हो चुके हैं

अब इसी शिक्षावली का छठा भाग भी आप लोगों के सन्मुख उपस्थित किया गया है इस भाग में प्रायः लौकिक प्रथा जो धर्म से विरुद्ध प्रचलित हो रही हैं उनका दिग्दर्शन कराया गया है साथ ही धार्मिक शिक्षाओं का उपदेश भी किया गया है तथा मंगल पाठ-माता और पुत्री का संवाद जिस में गृहस्थ के करणीय कार्यों का दिग्दर्शन कराया गया है इस प्रकार प्रत्येक पाठ लौकिक कार्य्य और धार्मिक शिक्षाओं से विभूषित कर दिया गया है जिस से प्रत्येक व्यक्ति सांसारिक क्रिया करते समय धार्मिक शिक्षाओं से वंचित न रह जाएं अतः एव यह भाग प्रत्येक व्यक्ति के पठन करने योग्य है और अपने आचरण को ठीक करने के लिये वा जैन धर्म के मर्म को जानने के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं आशा है कि विद्वज्जन इस से अवश्यमेव लाभ उठायेंगे और श्री वीर परमात्मा के प्रतिपादन किये हुए तत्वों को जानकर अपनी आत्मा को ज्ञान से विभूषित करके फिर विद्या और चारित्र से अपनी आत्मा को अलंकृत कर मोक्षाधिकारी बनेंगे।

साथ ही मैं श्री श्री श्री १००८ गणावच्छेदक वा स्थविर पद विभूषित श्री श्री श्री स्वामी गणपति राय जी महाराज जी वा श्री श्री श्री १००८ स्वामी जयराम दास जी महाराज जी वा श्री श्री श्री १००८ स्वामी शालिग्राम जी महाराज जी का जिन की कृपा और आज्ञा से उक्त विभाग को पूर्ण कर सका हूं सहर्ष उपकार मानता हूं।

भवदीय चरणारविन्दसेवी—

उपाध्याय (जैनमुनि) आत्माराम

जैन धर्म शिक्षावली

शुद्धिपत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
निरोग	नीरोग	१	
कल्पना	कल्पित	२	१०
आंसा	आंखो	३	१
कल्पन	कल्पित	३	१०
प्रेषण	प्रेषित	८	१०
अनुत्तीर्णपत्र	पत्र	६	६
मंदभागी	मंदभाग्य	६	१८
उत्तीर्ण	उत्तीर्णता	६	१६
अपनी	अपना	१०	७
थाली	थाली	११	११
को	का	११	११
थाली	थाली	१२	१८
हांडी	हांडी में	१५	[illegible]
सौन्दर्यता	सौन्दर्य	१८	१४
मंगल	मंगल है	२१	[illegible]
वाल	वाले	२४	
दरा	देरा	२५	

ग
ार्थो
त जाने
संपादन
ों के देखने
श्रम करते हैं ।
है कि प्रातः
किसी ने यह
य्या मे उठ कर
मंगलकारी है

जैन धर्म शिक्षावली

छठा भाग

अर्हत् मंगलपाठ ।

प्रिय सुज्ञ-पुरुषो ! इस विनश्वर संसार-चक्र में भ्रमण करते हुए बड़े पुण्य के योग से यदि जीव को मनुष्य जन्म की प्राप्ति होती है फिर भी मनुष्य-जन्म के सहकारी पदार्थों का मिल जाना और भी पुण्य की उत्कटता सिद्ध करता है आर्य-देश, उत्तम कुल, पञ्चेन्द्रिय संपूर्ण निरोग शरीर, महात्माओं का संसर्ग, शास्त्र श्रवण इत्यादि पदार्थों का मिल जाना भी महत् पुण्योदय के लक्षण हैं ।

किन्तु बहुत से भव्यजन उक्त-पदार्थों के मिल जाने पर भी फिर धन और विषय-जन्य पदार्थों के संपादन करने में अपनी परम्परायानुकूल मंगल पदार्थों के देखने में वा उनके उपलब्ध करने में अतीव परिश्रम करते हैं । जैसे कि—किसी ने यह मान रक्खा है कि प्रातः काल दधि का देखना परम मंगल है वा किसी ने यह निश्चय किया हुआ है कि प्रातःकाल शय्या से उठ कर पहिले रुपये का मुख देखना मंगल होता है ... किसी ने अपने मन में यह विश्वास किया हुआ

है कि—अपने मुखको दर्पण (शीशे) में देखना मंगल है तथा कई एक का यह निश्चय है कि—फल या फूल या गुडादि पदार्थ ही मंगलमय हैं तथा किसी ने इसी बात पर विश्वास किया हुआ है कि—पुत्र-जन्म, नूतन स्थान प्रवेश, लक्ष्मी की प्राप्ति इन्हीं पदार्थों का होना मंगल है तथा किसी २ के मन में यह भी बात ठसी हुई है कि—शय्या से उठते समय ही देवी या देवताओं का स्मरण करना परम मंगल है।

अस्तु यह सब उक्त मंगल लोगों ने अपनी २ बुद्धि द्वारा ही कल्पना किये हुए हैं वास्तव में वही मंगल उत्तम होता है जो प्रत्येक अवस्था में मंगल ही बना रहे।

सो वह मंगल श्री अरिहंत भगवान का पाठ है अर्थात् जब अपनी शय्या से सोकर उठा जावे तब उसी समय " नमो अरिहंताणं " यह पाठ पढ़ना चाहिए, क्योंकि—अरिहंत प्रभु सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं इतना ही नहीं किन्तु वे धर्मप्रवर्तक और जगत् प्रिय भी हैं।

इनका नाम सर्व बाहिर के मंगलों का उत्पादन करने वाला है।

इस जन्म के [illegible] से ही [illegible] हो जाता है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible]

जैसे पुष्पों वा सुन्दर वनस्पति के देखने से आँखों में निर्मलता और स्निग्धता बढ़ कर ज्योति बढ़ जाती है ठीक उसी प्रकार श्री अरिहंत प्रभु के पाठ से आत्मा निर्मल हो जाती है फिर वह निर्मल आत्मा शुभ प्रकृतियों का भी बन्धन कर लेती है जिस के प्रभाव से उस आत्मा को उसी जन्म में वा अन्य जन्म में पुण्य का बन्ध हो जाने से अनेक प्रकार के सुखों की प्राप्ति हो जाती है। अतएव सिद्ध हुआ कि श्री अरिहंत प्रभु का स्मरण करना ही परम मंगल है।

इसी मंगल से अन्य लोगों के कल्पन किये हुए मंगलों की प्राप्ति हो जाती है क्योंकि—मंगल पदार्थों के देखने से पुण्य के उदय होने की सम्भावना की जा सकती है सो पुण्य का बंध श्री अरिहंत प्रभु के पाठ से ही हो जाता है अतएव प्रधान अरिहंत मंगल है।

यदि ऐसे कहा जाय कि—जब श्री अरिहंत प्रभु का स्मरण किया गया तब क्या वह उस स्मरण करने वाले प्राणी का पाप छुड़ा देते हैं? इस शंका का समाधान यह है कि—जब प्राणी श्री अरिहंत प्रभु का स्मरण करते हैं तब उनके हृदय में शान्ति का विकाश होने लगता है तब वह उस समय पुण्य का वा कर्मों की शुभ प्रकृतियों [illegible] आत्म प्रदेशों पर बंधन करलेते हैं जिन का फल फिर [illegible] रूप भोगने में आता है अत: श्री अरिहंत प्रभु का

सिद्ध मंगल पाठ।

प्रिय पाठक गण—जिस प्रकार अर्हन् मंगल का वर्णन किया गया है ठीक उसी प्रकार सिद्ध मंगल विषय में भी जानना चाहिए।

क्योंकि सिद्ध परमात्मा शुद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, पारगत, परम्परागत, ज्योतिस्वरूप अशरीरी, अकायी, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं तथा ज्ञान से सर्व व्यापक हैं आत्मिक सुख के अनुभव करने वाले हैं उन्हीं सिद्धों के अनंत नाम होने से उनको लोग ईश्वर, परमात्मा, मुक्त, अनंत शक्तिवान् अनंत चक्षु इत्यादि नामों से उनका स्मरण करते हैं वे कृतकृत्य हैं उनके स्मरण से आत्मिक कल्याण होसकता है वे अपने ज्ञान से तीन काल के भावों को हस्तामलकवत् जानते और देखते हैं।

सो उनका स्मरण करना ही परम मंगल है उनके स्मरण से आत्मा समाधि को प्राप्त होजाता है तथा उनके नाम का स्मरण कल्पवृक्ष के समान मनोकामना पूर्ण करता है वे सब चराचर जीवों के हितैषी हैं उनके आत्मिक सुखों के सामने प्रकृति जन्य सुख अति तुच्छ प्रतीत होने लग जाते हैं जैसे दो बालक किसी विश्वविद्यालय में परीक्षा देकर मित्र स्थान में चले आए वहां किसी समय उन दोनों विद्यार्थियों में से एक विद्यार्थी नाना प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थों का भोजन कर रहा था और उन पदार्थों से अति

निमग्न होकर अपने पास बैठे हुए सहपाठी का उपहास्य भी कर रहा था और उसे यह भी कहता था कि प्रियवर ! तुम्हारे भाग्य में इस प्रकार के सुन्दर पदार्थों का आसेवन करना कहां लिखा है मैं अतीव भाग्यशाली हूं जो प्रतिदिन इस प्रकार के पदार्थों का सेवन करता रहता हूं ।

मित्रवर्य ! तू इस बात को सत्य मान, मेरे समान इस विनश्वर संसार में दूसरा कौन भाग्यशाली होगा ।

जब वह इस प्रकार के वचन कह ही रहा था तब अकस्मात् डाकद्वारा उन दोनों विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय से किसी मित्र के प्रेषण किये हुए दो पत्र उपलब्ध हुए, जब उन दोनों ने उन पत्रों को पढ़ा तब एक पत्र में यह लिखा हुआ था । प्रिय मित्र ! मुझे शोक से लिखना पड़ता है कि अबकी बार आप परीक्षा में उत्तीर्ण न होसके यह आपके पूर्व कृत मंद भाग्य के लक्षण प्रतीत होते हैं जो आपकी कक्षा में पढ़ने वाले सब विद्यार्थी उत्तीर्ण हो गए हैं केवल आप ही इस कक्षा में अनुत्तीर्ण रहे ।

दूसरे पत्र में यह लिखा हुआ था " आनन्द समाचार" प्रिय मित्रवर ' [illegible] शुभ समाचार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लिखना

यह बात भी मैंने विश्वविद्यालय के मुख्याध्यापकों के मुख से सुनी है आपका स्नेही—भवदत्त।

प्रथम पत्र उसी बालक का था, जो प्रकृतिजन्य भोज्य पदार्थों के खाने में अतीव आनंद मना रहा था और अपने पास बैठे हुए सहचर का उपहास्य भी करता था जब उसने अपने अनुत्तीर्णपत्र को पढ़ा तब वह उसी समय चिन्ता में निमग्न होकर अत्यन्त शोक करने लग गया उसका मुख कमल इस प्रकार मलिन हो गया जिस प्रकार चन्द्रमुखी कमल चन्द्र के छिप जाने से मलिन होजाते हैं तथा सूर्य मुखी कमल सूर्य के अस्त होजाने से मुरझा जाते हैं ठीक उस बालक का मन भी उसी प्रकार मुरझा गया और वह आंखों से अश्रुपात करता हुआ अपने मन में अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प उत्पन्न करने लग गया तथा देश परित्याग वा मृत्यु के उपायों की खोज में लगगया यावन्मात्र वे भोज्य पदार्थों में आनन्द मानता था उससे कई गुणा बढ़ कर वह शोक के विचारों में निमग्न होगया फिर वह अपने ही मुख से कहने लग गया कि मेरे समान कोई भी दूसरा मंदभागी नहीं है।

परन्तु जो दूसरा पत्र उत्तीर्ण विषय का था वह उसी के मित्र का था जो उसी के पास उस समय बैठा हुआ था तब उसने अपने पत्र को पढ़ा तब उसका हृदय इस प्रकार विकसित होगया जैसेकि श्रावण के मास मे मंद २ बूंदो

के गिरने से फूल या कालिएं खिल जाती हैं वह परम आनन्द मानता हुआ अपने आपको भाग्यशाली समझने लगा।

अब पाठक गण विचार कर देखें कि आत्मिक सुखों के सामने सांसारिक सुख कितने नंबर के रह सकते हैं। अर्थात् जब तक आत्मिक सुख उपलब्ध नहीं हुए तब तक ही सांसारिक सुख प्रिय लगते हैं जैसे जब तक उस भोजन करने वाले बालक को अपनी अनुत्तीर्णता सम्बन्धी पत्र नहीं मिला था तब तक ही वह भोजन में आनंद मनाता था जब उसको पत्र मिल गया तब उस का वह आनंद इस प्रकार उड़ गया जैसे सूर्य के उदय होते ही अंधकार भाग निकलता है।

अतएव आत्मिक सुखों के सामने पौद्गलिक (सांसारिक) सुख अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होने लगते हैं जैसे बालक धूल में तब तक ही आनंद मनाता है जब तक उसको स्वच्छता का ज्ञान नहीं होता।

सिद्ध भगवान् आत्मिक सुखों का अनुभव करने वाले हैं और वे अनंत शक्ति वाले हैं सो 'णमो सिद्धाणं' पाठ द्वारा सिद्ध भगवान् का जाप करना निर्मल और साथ ही इनके गुणों का अपनी आत्मा में [illegible]

[illegible]

[illegible]

चाहिए जैसे सिद्ध परमात्मा आत्मिक सुखों के अनुभव करने वाले हैं उसी प्रकार हमें सद् अभ्यास द्वारा आत्मिक सुखों का अनुभव करना चाहिए । तथा जैसे सिद्ध परमात्मा अनंत शक्ति वाले हैं उसी प्रकार बलवीर्या-न्तराय कर्म के क्षय करने की चेष्टा करनी चाहिए ताकि अनन्त शक्ति प्रगट हो जाय। तथा जैसे सिद्ध परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं उसी प्रकार ज्ञानावर-णीय और दर्शनावरणीय कर्मों के क्षय करने का पुरुषार्थ करना चाहिए जिस से यह उक्त गुण प्राप्त हो सकें।

तथा जैसे सिद्ध परमात्मा अकायिक (शरीर रहित) हैं उसी प्रकार मन वाणी और कायके योग को निरोध कर अकायिक बनने की इच्छा करनी चाहिए।

सो इस प्रकार सिद्ध मंगल का पाठ करना चाहिए क्योंकि सांसारिक पदार्थ प्रायः प्रथम मंगल मान लेने पर भी पीछे अमंगल रूप हो जाते हैं जैसे संयोग में वियोग बना हुआ है जन्म में देना बना हुआ है चुगली करने में भय बना हुआ है लोभ में नाश बना हुआ है क्रोध में प्रीति का नाश बना हुआ है मान में अपमान बना हुआ है छल में मित्रता का नाश बना हुआ है। संतोष में सुख बना हुआ है विद्या में यश और सद्-विचार बना हुआ है धन में दान भोग और नाश बना हुआ है दुग्ध में नवनीत मक्खन बना हुआ है स्वान्त

में सुख बसा हुआ है । ठीक उसी प्रकार सांसारिक पदार्थों में दुःख बसा हुआ है।

ऐसे ही पुत्र जन्म के समय आनंद मानते हुए जब उसका उसी समय वियोग हो जाता है । तब उस आनंद से कई गुणा बढ़ कर शोक माना जाता है।

अतएव सिद्ध हुआ कि-सांसारिक पदार्थों का मिल जाना वास्तव में मंगल नहीं है किन्तु सिद्ध भगवान का श्रद्धापूर्वक पाठ करना वा उनके गुणों का अनुकरण करना ही परममंगल है, इस लिए हे बालक और बालिकाओ ! तुम को योग्य है कि-प्रातः काल अपनी शय्या से उठते ही 'णमो सिद्धाणं' का भी पाठ पढ़ा करो।

फिर अपने मन में उनके गुणों का चिन्तन करना चाहिए, तथा उनके गुणों के आश्रित हो कर अपनी आत्मा को मंगल मय बनाना चाहिए इतना ही नहीं किन्तु आत्मविचार द्वारा अपने अंतरंग में रहने वाले काम क्रोध रूपी शत्रुओं को अपनी आत्मा से अलग कर देना चाहिए, क्योंकि—सिद्ध भगवान के स्मरण से कर्मों की अशुभ प्रकृतियें सब क्षय हो जाती हैं, और शुभ प्रकृतियें फिर बंध जाती हैं जिस का परिणाम उसी जन्म में वा भवान्तर में सुख रूप होता है तथा उस अवस्था ही कर्म क्षय हो जाते नर सिद्ध

पद की भी प्राप्ति हो जाती है जिससे मंगल की कामना करने वाली आत्माएं आप ही परम मंगल बन जाया करती हैं ।

साधु मंगल पाठ

प्रिय सुज्ञजनो ! जिस प्रकार समुद्र में डूबते हुए प्राणी को पोत (जहाज़) वा द्वीप का सहारा होता है उसी प्रकार संसार समुद्र में जो आत्माएं शारीरिक वा मानसिक दुःखों से पीड़ित हो रही हैं उन आत्माओं को साधु महात्माओं का ही शरण है, अतएव साधुओं के दर्शन करना उसे ही मंगल कहा गया है जैसे दीपक की संगति मात्र से दूसरा दीपक भी प्रकाश करने लग जाता है ठीक उसी प्रकार साधुओं की संगति करने से सज्जनता के गुणों की प्राप्ति हो जाती है। जिस से संगति करने वाला भद्र पुरुष गुणों के धारण करने से वह भी मंगल रूप हो जाता है ।

क्योंकि—साधु महात्मा पांच महाव्रतों के धारण करने वाले होते हैं जैसे कि—वे आयु पर्यन्त प्रथम अहिंसा व्रत का पालन करते हैं वे मन वाणी और काय से किसी जीव को दुःख नहीं देते वे सदैव काल आत्म ध्यान में ही निमग्न रहते हैं उन का शत्रु और मित्र पर भी सम भाव होता है वे आत्मविकाश की ओर ही सदा लगे रहते हैं ।

में सुख बसा हुआ है । ठीक उसी प्रकार सांसारिक पदार्थों में दुःख बसा हुआ है।

ऐसे ही पुत्र जन्म के समय आनंद मानते हुए जब उसका उसी समय वियोग हो जाता है । तब उस आनंद से कई गुणा बढ़ कर शोक माना जाता है।

अतएव सिद्ध हुआ कि-सांसारिक पदार्थों का मिल जाना वास्तव में मंगल नहीं है किन्तु सिद्ध भगवान् का श्रद्धापूर्वक पाठ करना या उनके गुणों का अनुकरण करना ही परममंगल है, इस लिए हे बालक और बालिकाओ ! तुम को योग्य है कि-प्रातः काल अपनी शय्या से उठते ही 'णमो सिद्धाणं' का भी पाठ पढ़ा करो।

फिर अपने मन में उनके गुणों का चिन्तन करना चाहिए तथा उनके गुणों के आश्रित हो कर अपनी आत्मा को मंगल मय बनाना चाहिए इतना ही नहीं किन्तु आत्मविचार द्वारा अपने अंतरंग में रहने वाले काम क्रोध रूपी शत्रुओं को अपनी आत्मा से अलग कर देना चाहिए, क्योंकि—सिद्ध भगवान के स्मरण से कर्मों की अशुभ प्रकृतियां मन्द पड़ जाती हैं और शुभ प्रकृतियां फिर बंध जाती हैं जिस का [illegible] या भवान्तर में शुभ रूप होता [illegible] इस [illegible] सब सिद्ध

पद की भी प्राप्ति हो जाती है जिससे मंगल की कामना करने वाली आत्माएं आप ही परम मंगल बन जाया करती हैं।

साधु मंगल पाठ

प्रिय सुज्ञजनो! जिस प्रकार समुद्र में डूबते हुए प्राणी को पोत (जहाज़) वा द्वीप का सहारा होता है उसी प्रकार संसार समुद्र में जो आत्माएं शारीरिक वा मानसिक दुःखों से पीड़ित हो रही हैं उन आत्माओं को साधु महात्माओं का ही शरण है. अतएव साधुओं के दर्शन करना उसे ही मंगल कहा गया है जैसे दीपक की संगति मात्र से दूसरा दीपक भी प्रकाश करने लग जाता है ठीक उसी प्रकार साधुओं की संगति करने से सज्जनता के गुणों की प्राप्ति हो जाती है। जिस से संगति करने वाला भद्र पुरुष गुणों के धारण करने से वह भी मंगल रूप हो जाता है।

क्योंकि—साधु महात्मा पांच महाव्रतों के धारण करने वाले होते हैं जैसे कि वे आयु पर्यन्त प्रथम अहिंसा व्रत का पालन करते हैं वे मन वाणी और काय से किसी जीव को दुःख नहीं देते वे सर्वत्र काल आत्म ध्यान में ही निमग्न रहते हैं उन का शत्रु और मित्र पर भी सम भाव होता है वे आत्मविकाश की ओर ही सदा लगे रहते हैं।

इसी कारण से वे निर्दोष और अल्पाहारी होते हैं उन्होंने इन्द्रियों और मन पर विजय पा ली है वे किसी प्रकार के भी वाहन (सवारी) पर आरूढ़ (चढ़ते) नहीं होते वे उदर निर्वाह-मात्र गृहस्थों के घरों में शुद्ध और निर्दोष भिक्षा मांग लाते हैं इतना ही नहीं किन्तु मधुर और मित (प्रमाणपूर्वक) भाषी होते हैं वे सदैव काल प्रेम भरे वाक्यों से निर्वैरता धारण करने का उपदेश करते रहते हैं। वे वृक्ष की नाँई आप शीत वा उष्ण आदि कष्टों को सहन कर जनता पर उपकार करते रहते हैं। फिर वे कदापि असत्य भाषी भी नहीं होते, अतएव वे द्वितीय महाव्रत सत्य को धारण करके सत्योपदेश द्वारा जनता का उपकार करते रहते हैं इतना ही नहीं किन्तु जो पदार्थों का स्वभाव है उसको यथार्थ प्रतिपादन करते हैं जिस से पदार्थों का यथार्थ ज्ञान हो जावे।

क्योंकि जब पदार्थों का यथार्थ ज्ञान हो जाता है तब हेय ज्ञेय और उपादेय का भी पूर्ण ज्ञान होने लगता है अर्थात् [illegible]

[illegible]

करते हैं क्योंकि—जब कोई जीव क्रोध के वशीभूत होकर बोलने लगता है तब उसको उस समय सत्य और असत्य के विचारने का ध्यान प्रायः नहीं रहता इतना ही नहीं किन्तु वे उस समय असत्य बोलने में ही अपनी शूर-वीरता समझता है और वे उस समय औरों पर मिथ्या दोष आरोपन करना ही अपना धर्म मानता है जैसे आग सर्व प्रकार के इंधन को भस्मसात् करने में समर्थ होती है ठीक उसी प्रकार क्रोध रूपी आग भी सर्व गुणों के भस्म करने में समर्थता रखती है. अतएव साधु जन सत्य की रक्षा के लिये क्रोध के परित्याग करने में ही सदा उद्यत रहते हैं।

जिस प्रकार आग पर रखी हुई हांडी प्रमाण पूर्वक उष्णता के लगने से चावल आदि पदार्थ भली प्रकार से पक जाते हैं यदि आग की उष्णता प्रमाण से अधिक उन पदार्थों को लग जावे तब वे सुपक्व नहीं [illegible] अपितु वे बिगड़ जाते हैं इसी प्रकार [illegible] प्रमाण से अधिक उष्णता सत्य [illegible] क्रोध सच [illegible] [illegible] अनुरूप क्रोध [illegible] [illegible] प्रकार महात्मा जन [illegible] परित्याग कर देते हैं [illegible]

के लिये लोभ को भी छोड़ देते हैं, क्योंकि–जिस प्रकार क्रोध आत्मा के सद्गुणों के नाश करने में मूल कारण माना गया है इसी प्रकार लोभ के वशीभूत हुई हुई आत्मा भी अपने पवित्र गुणोंका नाशकर बैठती हैं क्योंकि लोभ दोनों लोक में दुःखरूप फल के देने वाला है अतएव मुख-पुरुष सत्य की रक्षा के लिये इस को सर्वथा छोड़ देते हैं क्योंकि—यह बात भली प्रकार से मानी हुई है कि—लोभी से सत्य का पालन प्रायः नहीं हो सकता।

अतएव जिस प्रकार सत्य की रक्षा के लिये क्रोध त्याज्य बतलाया गया है उसी प्रकार लोभ भी सत्यव्रत पालन करने के लिये त्याग करने योग्य है।

जब क्रोध और लोभ छोड़ दिए गए तब सत्यवादी को किसी प्रकार का भय भी नहीं करना चाहिए।

क्योंकि-जब सत्यव्रत जैसा महाशस्त्र किसी के पास है तो फिर उसको किस बात का भय हो सकता है ? परंच सत्य वचन विवेकपूर्वक और मधुर होना चाहिए मधुर ही न हो अपितु किसी आत्मा के पीड़ा उत्पन्न करने वाला भी न होवे। अतः सत्यवादी को किसी प्रकार से भी भयभीत नहीं होना चाहिए

यह बात स्पष्ट है कि [illegible] जो आत्मा भयभीत होता है [illegible] नहीं हो सकता [illegible] सत्य बोलने

के लिये उद्यत हो जाता है इसी कारण से उस की आत्मा निर्भय नहीं होने पाती सो सत्यवादी को किसी का भी भय न मानना चाहिए जिस प्रकार भय सत्य वचन में बाधाकारक है उसी प्रकार हास्य भी सत्यवादी के लिये लाभप्रद नहीं कहा जा सकता।

अतएव सत्यवादी को हास्य का परित्याग कर देना चाहिए। इस में कोई भी संदेह नहीं है कि—हास्य परस्पर से उत्पन्न होता है जो पहिले बहुत ही आनंदरूप माना जाता है तदनु वह हास्य क्लेप के उत्पन्न करने वाला हो जाता है इसी वास्ते विद्वानों ने यह कथन किया है कि—हास्य का पूर्व रूप तो अवश्य आनन्दमय होता है परंच उत्तर भाग तो उसका अत्यन्त रौद्र हो जाता है तथा कौनसा असभ्य व्यवहार है जो हास्य के द्वारा नहीं किया जा सकता।

अतएव सत्यवादी—सत्य की रक्षा करने के वास्ते किसी के साथ भी उपहासादि क्रियाएं न करे, क्योंकि—उपहासादि क्रियाओं के द्वारा सत्य का नाश तो होता ही है अपितु साथ ही विनय के स्थान पर अविनय भी बढ़ जाती है जब विनय भाव जाता रहा तब आज्ञा पालन का स्वभाव चला जाता है तथा यह स्वाभाविक नियम देखा जाता है कि—जिसका विनय भाव अंतःकरण से जाता रहता है उसकी आज्ञा पालन करनी आवश्यकीय नहीं

समझी जाती । अतएव सत्यवादी का उपहास कदापि न करना चाहिए।

इस प्रकार सत्यव्रत को पालन करते हुए जिन्हों ने चौर्य कर्म का भी परित्याग कर दिया है अर्थात् वे बिना स्वामी की आज्ञा के तृणादि पदार्थों को भी ग्रहण नहीं करते उन के सामने चाहे कैसे पदार्थ पड़े रहें वे मन द्वारा भी उनके ग्रहण करने की इच्छा नहीं करेंगे किन्तु वे सदा श्री अर्हन् भगवान वा गुरु महाराज की आज्ञा में ही विचरते रहते हैं इसी कारण से उन्हें "स्वामी जी महाराज" कहा जाता है।

वे न तो कौड़ी पैसा रखते हैं और ना ही सम्मादि पदार्थ दूसरे की बिना आज्ञा ग्रहण करते हैं।

जब उन्होंने तीसरा महाव्रत धारण कर लिया फिर वे ब्रह्मचर्य को भी दृढ़ता पूर्वक धारण करते हैं क्योंकि जैसे शरीर में उत्तमांग (मस्तक) प्रधान होता है उसी प्रकार सर्व व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत प्रधान है।

जैसे जिस नक्षत्र के समूह में चन्द्रमा [illegible] [illegible]

[illegible]

सब लोग प्रायः इच्छा रखते हैं ठीक उसी प्रकार ब्रह्मचारी के दर्शनों की सर्व जन अंतःकरण से उत्कण्ठा धारण करते हैं।

तथा आत्मिक शक्ति और शरीर की कान्ति तथा मस्तक का सौन्दर्य ब्रह्मचर्य को धारण करने से प्राप्त हो सकता है।

अपितु जो कामी जन होते हैं उनको "जरा मरण रोग सोग बहुलं" शरीर की कान्ति की हानि अप मृत्यु वा अकाल मृत्यु "रोग और शोक" यह बहुलता से विशेष होते हैं जब ब्रह्मचर्य धारण कर लिया तब उक्त चारों बातों से ब्रह्मचारी मुक्त हो जाता है।

इतना ही नहीं किन्तु इस की रक्षा के लिये उपनियम अनेक प्रकार से धारण करने पड़ते हैं जैसे कि ब्रह्मचारी जिस स्थान पर स्त्री, पशु और नपुंसक (हिजड़ा) रहते हों उस स्थान पर न रहे (१) काम भोग के उत्पादन करने हारी स्त्री के निकट न रहे (२) राग की आंखों से स्त्री को न देखे (३) जिस स्थान पर स्त्री के नाना प्रकार के शब्द सुनाई पड़ते हों उस स्थान मे न रहे (४) पूर्व के अनुभव किये हुए काम भोगों की स्मृति न करनी चाहिये और स्त्री के साथ एक आसन पर भी न बैठना चाहिये (५) जिस आहार के करने से मन में विकार उत्पन्न हो ऐसे इस प्रकार के आहार को ग्रहण न करना चाहिये जैसे

प्रमाण से अधिक घृत दुग्ध वा दही आदि पदार्थों का आसेवन करना (६) तथा शुष्क आहार जैसे चने आदि के भी प्रमाण से अधिक न खाना चाहिये (७) ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये ही शुचि के अतिरिक्त शरीर का शृंगार नहीं करना चाहिये क्योंकि जब शरीर का शृंगार किया जाता है तब ही मन में विकार के भाव प्रायः उत्पन्न होजाते हैं शृंगार में विकार माना गया है तथा शृंगार युक्त को देखकर अन्य आत्माओं के मन में उसे देखते ही विकार के भाव उत्पन्न हो जाते हैं अतएव उक्त व्रत की रक्षा के लिये शृंगार का परित्याग करना चाहिये।

अपितु आजकल यावन्मात्र प्रायः कदाचार (दुराचार) देखे जाते हैं उन में बहुल सा अंश शृंगार का कारण भी माना जा सकता है।

अतएव उक्त व्रत को शुद्ध पालन करने के लिये शृंगार न करना चाहिये और साथ ही काम राग के उत्पन्न करने हारे सुशब्द वा गीत भी न सुनने चाहिये अपितु जब नृत्यशाला में कामजन्य शब्दों वा गीतों को सुना जाता है उस समय मन का निरोध करना कठिन हो जाता है जिस प्रकार शब्द कामराग को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार रूप, गंध, रस और स्पर्श भी कामराग के उत्पन्न करने वाले माने गये हैं सो जो उक्त राग के उत्पन्न करने वाले पदार्थ हों उन्हें छोड़ देना चाहिये। अब चतुर्थ

महाव्रत धारण किया गया तब पंचम अपरिग्रह व्रत भी धारण करना चाहिये अर्थात् धन धान्य वा भूमि आदि पदार्थों का सर्वथा त्याग किये जाने पर भी किसी पदार्थ पर ममत्व भाव न करना चाहिये।

प्रायः देखा जाता है कि संसार में यावन्मात्र दुःख उत्पन्न होते हैं उन में मूलकारण ममत्व भाव ही होता है जब ममत्व भाव जाता रहा तब दुःख भी जाते रहते हैं। अतः अपरिग्रहव्रत को धारण कर फिर रात्री भोजन भी न करना चाहिए अपितु रात्रि भोजन करने में आत्मा प्रायः हिंसा से नहीं बच सकती है, इसी वास्ते विद्वानों ने रात्री भोजन को अन्ध भोजन कथन किया है।

जब शुक (तोते) वा कबूतर आदि पक्षी भी रात्रि को नहीं खाते तब मनुष्यों को तो सर्वथा ही न खाना चाहिये और रात्रि को नाभि कमल भी विकसित नहीं होता है इस लिये भी रात्री भोजन त्याज्य माना गया है।

तथा यावन्मात्र प्रायः व्यावहारिक सुकर्म हैं जैसे स्नान देव पूजादि जब वह रात्री को नहीं किये जाते तो फिर रात्रि भोजन कैसे उपादेय माना जा सकता है

जिस समय से रात्री भोजन का परित्याग किया गया हो उसी समय से उस आत्मा को सद् चतु नव कल के व्यतीत होने लगता है सो इस प्रकार के जो नियम के धारण करने वाले साधु महात्मा हैं वे ही परम मंगल

इस लिये अपनी शय्या से उठते ही साधु मंगल का पाठ पढ़ना चाहिये ।

अपितु साधु संघ में जो शिक्षा देने वाले व्यक्ति होते हैं और शुद्ध आचार पालते हैं औरों को उसी आचार पर चलाने की चेष्टा करते रहते हैं और समस्त साधुसंघ के नेता हैं उनको **आचार्य** कहते हैं।

जो साधु संघ में श्रुताध्ययन कराते हैं और आप सदैव काल श्रुताध्ययन में लगे रहते हैं उनको **उपाध्याय** कहा जाता है परन्तु साधु पद में वे दोनों ही गर्भित होते हैं किन्तु उक्त क्रियाओं के करने से उन की **आचार्य** वा **उपाध्याय** संज्ञा हो गई है।

अतएव शय्या से उठते ही 'नमो आयरियाणं' 'नमो उवज्झायाणं ' ' नमो लोएसव्वसाहूणं ' ऐसे पद पढ़ने चाहियें। क्योंकि यावन्मात्र संसार में मंगल पदार्थ माने गये हैं उन सब में यह उक्त कथन किये गए पदार्थ ही मंगल हैं। अन्य पदार्थ इन्हीं मंगलों के द्वारा उत्पन्न होते हैं इस लिये प्रत्येक प्राणी को योग्य है कि प्रातःकाल ही उक्त कथन किए हुए मंगलों का पाठ अवश्यमेव करे क्योंकि मंगलों से मंगलों की प्राप्ति होती है तथा उक्त मंगलों को भाव पूर्वक नमस्कार किया गया है जिन मंगलों

की व्यावहारिक कार्यों में आवश्यकता समझी जाती है वे पदार्थ स्वतः ही उपलब्ध हो जाते हैं।

इतना ही नहीं अपितु उक्त मंगलों द्वारा अनेक प्रकार के संकटों के दूर होते ही अन्त में निर्वाण पद की भी प्राप्ति हो जाती है जो सर्वदा और सर्वथा मंगल रूप पद है।

धर्म मंगल पाठ।

यावन्मात्र संसार में मंगल पदार्थ हैं उन सब में से धर्म मंगल उत्कृष्ट पदार्थ है क्योंकि वे मंगल पदार्थ क्षण भर में अमंगलता के रूप को धारण कर लेते हैं जैसे— जल से पूर्ण घट मंगल रूप माना गया है यदि वही घट जिस व्यक्ति ने उसको मंगल रूप माना था उसके शिर पर से गिर कर फूट जावे फिर वह उस घट को अमंगल रूप (कुशकुन) मानने लग जाता है।

अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म मंगल इस घट के समान क्षण रूप मंगलता के भाव को धारण नहीं करता अपितु धर्म मंगल सर्वोत्कृष्ट मंगल है।

शास्त्रों में लिखा है कि—' धम्मो मंगल मुक्किट्ठं ' धर्म मंगल ही उत्कृष्ट मंगल है क्योंकि—इस धर्म मंगल में ही अन्य सब मंगल उपलब्ध हो सकते हैं अतः धर्मात्माओं के दर्शन करने से और धार्मिक शास्त्र पढ़ने तथा धार्मिक कार्य करने से सब मंगल ही कथन किए गए हैं

यद्यपि संसार में सर्व मतमतान्तर वाले अपने स्वीकार किए हुए धर्म को मंगल समझ रहे हैं परंच वास्त में श्री केवली भगवान् का प्रतिपादन किया ही धर्म मंग है क्योंकि–श्री अर्हत् वीतराग प्रभुने जो धर्म कथ किया है वह अपने स्वार्थ के लिए नहीं अपितु भव्य जी के कल्याण के लिए ही कथन किया है जैसे कि—श्री अर्हत् भगवान् ने धर्म शब्द का स्वरूप वर्णन करते हु तीन प्रकार से धर्म कथन किया है—

"अहिंसासंजमोतवो" उन्होंने भव्य प्राणिय के कल्याण के लिए प्रथम तो अहिंसा धर्म प्रतिपाद किया है क्योंकि—संसार में यदि विचार कर देखा जा तो कोई भी मरना नहीं चाहता अपितु सर्व प्राणियों के अपना जीवन ही प्यारा है । अतः किसी भी प्राणी क हिंसा न करनी चाहिये । विचार से और भी देखा जाए त वैर से वैर नहीं जाता अपितु शांति से वैर नष्ट हो जाता है सो जब तक प्राणी अहिंसा धर्म पर आरूढ नहीं होते तब तक शांति और प्रेम भाव भी नहीं बढ़ सकता ।

क्योंकि—जब अंतः करण में जीवों के साथ वैर भाव बसा हुआ है तो फिर शांति और प्रेम भाव किस प्रकार हो सकता है ?

सो हे पाठक गण ! यदि आप लोग धर्म और जाति

तथा देश का अभ्युदय चाहते हो तो अहिंसा धर्म को धारण करो।

अपने प्राणों के समान अन्य जीवों के प्राणों को समझो सब जीवों से मैत्री भाव तथा भ्रातृ भाव धारण करो जब सब जीवों से आप लोगों का वैर भाव जाता रहेगा तब धर्म और देश का अभ्युदय उसी समय हो जाएगा।

मन में इस बात का भी ध्यान रक्खो कि— जब तुम किसी के मारने की चेष्टा करते हो और वह तुम्हारी उक्त चेष्टा को देख कर भयभीत होता है वा भागने की क्रियाएं करता है इस से स्वतः सिद्ध हुआ कि—वह उस समय परम दुःखी होता है सो किसी को अन्याय पूर्वक दुःख देना ही पाप बतलाया गया है अत-एव किसी को दुःख न देना चाहिये।

जब कोई हम पर मारने के वास्ते आक्रमण (हमला) करता है तो उस समय जैसी हमारी व्यवस्था होती है उसी प्रकार अन्य जीवों की व्यवस्था भी जाननी चाहिए इस बात को हृदय में ध्यान करके सब जीवों के साथ प्रेम भाव से वर्तना चाहिए

किसी के अन्तःकरण को दुःखित करने के लिए गाली भी न देनी चाहिए, क्योंकि गाली देने से उस का अन्तःकरण दुःख मानता है सो दुःख देना है अधर्म

है तथा जब अहिंसा धर्म धारण ही कर लिया तब फि
द्वेष, वैर, निंदा तथा चुगली किस की की जा
उक्त बातों के अस्तित्व से मानना पड़ेगा कि वास्तव
अहिंसा धर्म धारण ही नहीं किया गया, जिसने दया के
भावों को धारण कर लिया उस ने सब से मैत्री कर ली
तथा उस ने सर्व नियमों को पालन कर लिया वा उस
ने ज्ञान के सार को पा लिया क्योंकि—शास्त्र में लिख
है कि—"एवं खुनाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणं"
अर्थात् ज्ञान का सार यही है कि—किसी जीव की हिंस
न की जावे अतएव अहिंसा धर्म का पालन करने के लिए
तीनों योगों को भी शुद्ध करना चाहिए जैसे कि—

१—मन के संकल्पों से किसी प्राणी का अनिष्ट
चिंतन न करना चाहिए तथा किसी की वृद्धि को देख कर
अपने मन में उसके प्रति ईर्षा भाव न करना चाहिए। न
किसी की निंदा वा चुगली ही करनी चाहिए।

२—वचन के द्वारा किसी को दुःखित न करना
चाहिए जैसे कि किसी के प्रति कठोर वाणी का बोलना
तथा उसका मर्म छेदन करना इतना ही नहीं अपितु वचन
के द्वारा उसका अन्य द्वारा छेदन करना इस प्रकार से
करना न चाहिए

३ [illegible] 'किसी' को मारना तथा किसी
[illegible] नहीं करना चाहिए [illegible]—जब किसी के

अतएव अहिंसा धर्म को पालने के लिए और अपने शरीर की रक्षा के लिए विना देखे खानपान कदापि न करना चाहिए।

दूसरा धर्म श्री अर्हन् भगवान् ने संयम बतलाया है जिस का अर्थ आश्रव का निरोध करना है अर्थात् जो २ कर्मों के आने के मार्ग हैं उन्हें संयम के द्वारा बंद करना जैसे हिंसा को अहिंसा से रोकना, असत्य को सत्य से, चोरी कर्म को अचौर्य भाव से, मैथुन क्रीड़ा को ब्रह्मचर्य से, परिग्रह को अपरिग्रह से, अर्थात् हर एक क्रिया यत्न से बाहिर न होनी चाहिए जब सर्व प्रकार से यत्न किया जाएगा तब संयम रूप धर्म आत्मा के विशुद्ध करने के लिए उत्पन्न हो जायगा।

संयम के द्वारा जब नूतन कर्मों का आवागमन बंद हो जाता है तब प्राचीन कर्म तप क्रिया से क्षय किये जा सकते हैं अतएव तीसरा धर्म श्री भगवान् ने तप रूप प्रतिपादन किया है।

यद्यपि तप कर्म के शास्त्रों में अनेक भेद वर्णन किए गए हैं तथापि तप कर्म का मूल अर्थ इच्छा निरोध ही है क्योंकि जब सर्व पदार्थों से इच्छा का निरोध किया जाता है तब तप कर्म हो जाता है। इस लिए यथा-शक्ति हर एक पदार्थ से इच्छा का निरोध करना चाहिए।

इच्छा के निरोध से ही हर एक प्रकार का सुख उपलब्ध हो सकता है संसार में इच्छावान् ही दुःखी देखा जाता है अतएव इच्छाओं का निरोध हो जाने पर तप कर्म स्वतः ही हो जाता है जैसे कि-जब खानपान की इच्छा का निरोध किया गया तब उपवास (व्रत) करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है जब सर्व प्रकार की सांसारिक इच्छाओं का निरोध किया गया तब ध्यान योग और तप में स्थिरता बढ़ जाती है जब अपने शरीर की रक्षा का परित्याग किया गया तब सेवा धर्म में प्रवेश किया जाता है तथा जब आलस्य वा विषय विकार की इच्छाओं का निरोध किया गया तब स्वाध्याय रूप तप के करने की इच्छा जागृत होती है ।

अतएव श्री अर्हन् भगवान् ने अहिंसा संयम और तप रूप धर्म को ही सर्वोत्कृष्ट धर्म मंगल प्रतिपादन किया है इस लिए धर्म रूप मंगल से ही अपनी आत्मा को मंगल मय बनाना चाहिए तथा इसी धर्म में दान शील तप और भाव रूप धर्मों का भी प्रवेश हो जाता है जब धर्म मंगल ग्रहण किया गया तब उस प्राणी को अन्य बाह्य मंगलों की क्या आवश्यकता है क्योंकि धर्म मंगल से ही अन्य सर्व मंगल प्राप्त हो सकते हैं जैसे प्रातः काल शय्या से उठने पर नवकार मंत्र को पढ़

विद्या शब्द का अर्थ ही यह है कि भलीप्रकार से पदार्थों का ज्ञान हो जाना जब अच्छे और निकृष्ट (बुरे) मार्ग का भली भांति से बोध हो जाता है तब अच्छे आचरणों द्वारा आत्मा सुन्दर मार्ग में जाने की चेष्टा करने लगती है जिसका अन्तिम परिणाम मोक्ष रूप फल की प्राप्ति होती है।

पाठक गण! इस लिये शास्त्राध्ययन का अभ्यास अवश्यमेव करना चाहिये इसी से आत्म समाधि हो सकती है।

देखो जब किसी ने शास्त्राध्ययन किया ही नहीं तब उस को भले और बुरे का ज्ञान कैसे हो सकता है यदि ऐसे कहा जाय कि हमारे ज्ञानावरणीय कर्म का उदय है इसलिए हमारे से शास्त्राध्ययन नहीं हो सकता। इस शंका का समाधान सूत्रकार ने इस प्रकार से किया है कि—स्वाध्याय करने का अभ्यास होना चाहिये क्योंकि स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म क्षय वा क्षयोपशम हो जाते हैं जिस से फिर ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। जैसे कि सूत्र में लिखा है कि—

सज्झाएणं भंते जीवे किं जणयइ।
सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ॥

उत्तराध्ययन सूत्र अ० ..

अर्थ — श्री गौतम स्वामी श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछते हैं कि हे भगवन् ! स्वाध्याय के करने से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है । इस प्रश्न के उत्तर में श्री भगवान् कहते हैं कि—हे गौतम ! स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म क्षय हो जाते हैं क्योंकि जब शास्त्र सूत्र का अध्ययन किया जाता है तब ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय वा क्षयोपशम हो जाने से स्वयम् शक्ति बढ़ जाती है जिस से फिर ज्ञान में रुचि विशेष बढ़ती चली जाती है।

अपितु इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि शास्त्र में स्वाध्याय पांच प्रकार का वर्णन किया गया है जैसे कि—

(१) वाचना—पढ़ना और पढ़ाना ।

(२) पृच्छना—शंका समाधान करना अर्थात् जिस बात की शंका हो उस बात का सम्यगतया निर्णय करना ।

(३) परिवर्तना—पूर्व पठित की अनुवृत्ति करना अर्थात् जो पहिले पढ़ा हुआ है उस को पुनः स्मरण करना क्योंकि पूर्व पठित पाठ बिना अनुवृत्ति [illegible] रण हो जाता है । अतः अनुवृत्ति अवश्य [illegible]

[illegible] अनुप्रेक्षा [illegible]
[illegible] करना अर्थात् [illegible]

ही नहीं किन्तु उस पाठ में आए हुए विषय को अपने हृदय में भली प्रकार से स्थापन करना साथ ही हरएक पदार्थ की उत्पाद दशा व्यय दशा और ध्रौव्य दशा पर विचार करते रहना जैसे कि द्रव्यार्थिक नय के मत से सर्व द्रव्य सत्रूप होते हैं किन्तु पर्यायार्थिक नय के मत से प्रत्येक द्रव्य की नाना प्रकार की दशाएं होती रहती हैं जैसे द्रव्यार्थिक नय के मत से सुवर्ण द्रव्य ध्रौव्य रूप होता है किन्तु उस सुवर्ण के जो नाना प्रकार के आभूषण बनाए जाते हैं उस अपेक्षा से उस सुवर्ण में उत्पाद व व्यय रूप धर्म दोनों ही संघटित हो जाते हैं जैसे कल्पना करो कि आज किसी के पुत्र का जन्म हुआ जहां पर तो जन्म हुआ वहां उसका महोत्सव मनाया जाता है और जहां पर उसकी मृत्यु हुई थी वहां पर शोक था।

परंतु जीव दोनों दशा में सत् रूप है अपरंच पहिले शरीर के परित्याग होजाने से उसके सम्बन्धी विलाप कर रहे थे नूतन शरीर के धारण किये जाने पर नूतन शरीर के सम्बन्धी जन्म महोत्सव मना रहे हैं परंच जीवात्मा दोनों शरीरों में वही थी इसी का नाम पर्याय कहलाते हैं सो अनुप्रेक्षा द्वारा प्रत्येक द्रव्यों की पर्यायें का चिंतन करना उसीका नाम अनुप्रेक्षा नामक स्वाध्याय कहा जाता है

५ धर्म कथा—पांचवां स्वाध्याय का भेद धर्म कथा है अर्थात् सर्दव काल धर्म कथा के सुनने सुनाने में उद्यत रहना चाहिए क्योंकि—सर्दव काल जीव चारों विकथाओं में समय व्यतीत करते रहते हैं जैसे कि-स्त्री कथा-भत्त कथा-देश कथा-और राज्य कथा-इन कथाओं के करने से आत्मिक लाभ की प्राप्ति किंचिन्मात्र भी नहीं हो सकती। हां, सांसारिक कामों में निपुणता अवश्यमेव हो यह जाती है सो उक्त विकथाओं से निवृत्त होकर धर्म कथा के सुनने सुनाने में पुरुषार्थ करना यह भी स्वाध्याय है क्योंकि—यदि पठन करने की शक्ति नहीं है तो सुनने से भी ज्ञान की प्राप्ति होसकती है।

धर्मकथा उसी का नाम है जिसके सुनने से आत्मिक लाभ हो तथा पदार्थों के धर्मों (स्वभावों) का ठीक २ ज्ञान हो जाए। सो इस प्रकार स्वाध्याय के पांच भेद वर्णन किये गये हैं इन्हीं पांचों द्वारा ज्ञानावरणीय कर्म क्षय वा क्षयोपशम हो जाता है अतएव सिद्ध हुआ कि स्वाध्याय के समान कोई भी तप नहीं है क्योंकि जिसके द्वारा अज्ञान दूर होजाता है और मन की एकाग्रता से ज्ञान प्रकाश होता है सो स्वाध्याय अवश्यमेव करना चाहिए।

आजकल जो प्राय विशेष अशान्ति उपस्थित हो रहा है उसका मूल कारण भी प्राय स्वाध्याय का न करना ही प्रतीत होता है क्योंकि स्वाध्याय के बिना किये

शांति की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है सो शांति की प्राप्ति और पदार्थों के बोध के लिये तथा सदाचारी बनने के अर्थ शास्त्राध्ययन अवश्यमेव करना चाहिए।

यह बात भली प्रकार से मानी हुई है कि जब तक धार्मिक शास्त्रों का भली प्रकार से बोध न होगा तब तक प्राणी प्रायः धार्मिक क्रियाओं में आरूढ़ नहीं हो सकते वा यावन्मात्र संसार में लोग जूआ, मांस, शिकार वेश्या, परस्त्रीसंग, मदिरापान और चोरी आदि कुकर्मों में पड़कर दुःखों का अनुभव करते हैं यह सब धार्मिक शिक्षाओं के न मिलने का ही कारण है जब उन व्यक्तियों का उक्त कुकर्मों में अभ्यास बढ़ जाता है फिर उनको धार्मिक शिक्षाएं प्रायः लाभ नहीं पहुंचा सकतीं इसलिये धार्मिक शास्त्रों का प्रथम ही अभ्यास करना चाहिए। क्योंकि धार्मिक शिक्षाओं के विना फिर अर्थों के अनर्थ करने पड़ते हैं जैसे किसी विद्वान् ने किसी मदिरा पीनेवाले से कहा कि यदि मदिरा पान की शीशी को भी पैर लग जाएं तब भी आत्मा दुर्गति में ले जानेवाले कर्मों का संचय कर लेती है अतएव मदिरा पानका भाजन भी छूने योग्य नहीं है। इस के प्रतिवाद में मदिरा पीनेवाले ने कहा कि आप ठीक कहते हैं क्योंकि पवित्र वस्तु के अविनय करने से अवश्य उस को दुर्गति मिलनी चाहिए मदिरापान से बढ़कर संसार में कौनसा और पदार्थ आनन्द प्रदान करनेवाला है इस

लिये उसको अवश्य दुर्गति में ही आना चाहिए जो इस प्रकार के पदार्थों की भी अविनय करने में तत्पर है। पाठकगण ! इस बात पर विचार करें कि धार्मिक शिक्षाओं के न होने से किस प्रकार अर्थों के अनर्थ करने पड़ते हैं।

सो प्रत्येक प्राणी को योग्य है कि वह प्रातःकाल में थोड़ा या बहुत शास्त्रों का स्वाध्याय अवश्य करे, जिससे शांति और ज्ञान की प्राप्ति होजावे, यदि पढ़ने की शक्ति न होवे तो उक्त धर्म कथादि चार प्रकार के स्वाध्यायों में से जिस प्रकार के स्वाध्याय की प्राप्ति होवे उसे ही करे इस के करने से आत्म कल्याण और शांति प्रचार भली प्रकार से हो सकते हैं तथा ज्ञानके प्रचार से देश अभ्युदय और सेवाधर्म भली प्रकार से किया जा सकता है अतएव स्वाध्याय अवश्यमेव करना चाहिए।

छठा पाठ

कर्म विषय

सुज्ञ पुरुषो ! आत्मा का लक्षण चैतन्यता माना गया है अर्थात् जो सुख वा दुःख का अनुभव करनेवाला होता है उसे ही आत्मा कहते हैं निश्चय नय के मत से देखा जाय तो आत्मा शुद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, अविनाशी अनन्त शक्तिवाला है परन्तु अनादि कालसे कर्मों के वश होने [illegible] आत्मा शारीरिक [illegible]

[illegible] है।

परञ्च कर्मों का करना और भोगना यह क्रम अनादि से चला आरहा है अपितु पर्य्यायार्थिक (हालतें) नय की अपेक्षा से कर्म सादि सान्त हैं क्योंकि जब कोई कर्म किया गया है तब उस की आदि होती है जब उस कर्म का फल भोग लिया तब उस कर्म का अंत होजाता है।

अतएव जब नूतन कर्मों का संवर किया जाता है तब प्राचीन कर्म तप द्वारा क्षय किये जा सकते हैं जब आत्मा सर्वथा कर्मों से विमुक्त हो जाती है तब वही आत्मा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होकर अनन्त शक्तियुक्त आत्मिक अनन्त सुखों के अनुभव करनेवाली होती है अपितु जब तक आत्मा सर्व प्रकार के कर्मों से विमुक्त नहीं हुआ तब तक वह कर्मों के बंधन में फंसा हुआ नाना प्रकार के शारीरिक वा मानसिक दुःखों का अनुभव करता रहता है।

जैसे एक दर्पण (शीशा) है उसके सामने जिस वर्ण का वस्त्र रख दिया जावे उसी वर्ण का दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ जाता है ठीक उसी प्रकार जैसे जैसे आत्मा कर्म करती है उन कर्म के सूक्ष्म परमाणुओं के समूह उन की आत्मा पर लग जाते हैं और वे परमाणु समय आने पर जब भोगने में आते हैं तब जिस प्रकार ग्रहण किये थे, उसी प्रकार के सुख वा दुःख का अनुभव कराते हैं। किन्तु श्री भगवान् ने दो प्रकार से कर्मों का स्वरूप वर्णन किया है जैसे कि—निद्धत कर्म और निकाचित कर्म

जो कर्म आत्म प्रदेशों के साथ चीर नीरवत् ओत प्रोत हो गए हैं अर्थात् जीव के प्रदेशों के साथ दूध और पानीवत् मिल गये हैं उन्हें तो निकाचित कर्म कहते हैं वह तो अवश्यमेव भोगने में आवेंगे अनेक यत्न किये जाने पर भी वे अपना फल दिये बिना नहीं रह सकते।

किन्तु जो निद्धत्त कर्म हैं वे तप संयम वा योगादि द्वारा क्षय भी किये जा सकते हैं।

√ अतएव सदैव काल शुभ भाव ही रखने चाहिये। क्योंकि कहीं ऐसे न हो जावे कि जो अशुभ कर्म हैं उन का निकाचित बंध पड़ जाए जिस से चिरकाल तक दुःखों का ही अनुभव करना पड़े।

उन सूत्रों में कर्मों के विषय बड़ी विस्तृत व्याख्या की गई है अन्त में यह बतलाया गया है कि—

"सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णा फला भवन्ति, दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णा फला भवन्ति।"

अर्थात् जो शुभ कर्म हैं उनके शुभ [illegible] फल होते हैं और जो अशुभ कर्म हैं उन के अन्त में [illegible] फल होते हैं।

जैसे कैसा भी मधुर विष भक्षण [illegible] पर उसका अन्तिम फल प्राण नाश करना [illegible] कैसा भी कटुक औषधि का पान किया गया [illegible] अन्तिम

फल रोग की निवृत्ति करना ही है इसी प्रकार जो कर्म किया गया है उसका फल अवश्यमेव भोगने में आवेगा। इस बात का ठीक निश्चय करके सहनशक्ति को धारण करना चाहिये।

क्योंकि कर्म तो अपने ही किये हुए हैं तब वे विना भोगे किस प्रकार छूट सकते हैं प्रत्यक्ष में देखा जाता है कि जो बात कर्मों में नहीं होती, उसकी सिद्धि अनेक यत्न करने पर भी नहीं दीख पड़ती। अतः यदि पीछे शुभ कर्म नहीं किये गये तो अब शुभ कर्मों का संचय अवश्य कर लेना चाहिये जिससे फिर आगामी काल में दुःखों का अनुभव न करना पड़े।

जिस समय अशुभ कर्म उदय में आते हैं उस समय चाहे कोटाकोटी देवगण भी एकत्र होकर रक्षा करनी चाहें किन्तु वे भी रक्षा नहीं कर सकते अतएव सदैव काल शुभ कर्मों की ओर ही झुकना चाहिये।

यदि किसी समय अशुभ कर्म हो जाए तो उस कर्म का अपने अन्तःकरण में पश्चात्ताप करना चाहिये जब इस प्रकार किया जायगा तब कर्मों के बन्धन निगड़ नहीं होंगे।

जिस प्रकार शुष्क घड़े पर गिरी हुई रज जम नहीं सकती ठीक उसी प्रकार पश्चात्ताप किये जाने पर अशुभ कर्मों का अति निगड़ बन्धन भी नहीं हो सकता परन्तु जो

घट (घड़ा) तेल से पहिले ही लिप्त हो रहा है यदि उस में रज पड़ जाए तो वह उस पर जम जाती है इसी प्रकार राग द्वेष के द्वारा किए हुए कर्मों का आत्मा के साथ निगड़ बन्धन हो जाता है।

इसमें कोई भी सन्देह की बात नहीं है कि कर्म किसी का नाम नहीं है किन्तु कर्त्ता की क्रिया द्वारा जो आत्म प्रदेशों पर सूक्ष्म परमाणुओं का समूह जम जाता है उसी की " कर्म " संज्ञा है।

जब उन के फल भोगने का समय आता है तब उन परमाणुओं का समूह सुख वा दुःख देने का एक मात्र कारण बन जाता है। जैसे किसी ने लशुन खा लिया तब उस लशुन के सूक्ष्म दुर्गन्ध मय परमाणु श्वासोश्वास में जा मिलते हैं जब वह किसी के पास बैठकर श्वासोश्वास लेने लगता है तब उसके मुख से दुर्गन्ध आने लगती है।

ठीक इसी प्रकार कर्म्मों के सूक्ष्म परमाणु आत्मप्रदेशों पर स्थित होकर फल देते हैं।

अतएव सिद्ध हुआ कि कर्म्मों का बन्धन आत्मा के भावों पर ही निर्भर है इस लिये सदैव काल सुन्दर भावों द्वारा पुण्य कर्म के परमाणुओं को ही उपार्जन करना चाहिये।

क्योंकि नव प्रकार से पुण्य कर्म का बन्धन किया जाता है जैसे कि—

१. अन्नपुण्य—अन्न के दान से पुण्य कर्म का बन्धन किया जाता है अर्थात् जो अनाथ और नाना प्रकार के दुःखों से दुःखित हो रहे हैं उनकी अन्नदान से रक्षा करना तथा उनकी सहायता में कटिबद्ध हो जाना इस क्रिया द्वारा भी जीव पुण्य कर्म का संचय कर लेते हैं।

२. पान पुण्य—जो आत्मा तृषा से पीड़ित हो रही हैं और उनके प्राण कंठ तक पहुंच गए हैं ऐसे प्राणियों की जलद्वारा रक्षा करना उचित है।

३. लयन पुण्य—पहाड़ों की कन्दरा में जो स्थान बने हुए होते हैं जिन में रह कर बहुत सी आत्माएं आत्म-समाधि लगा सकती हैं तथा जो शीत वा उष्णता से पीडित हों उनको आश्रय स्थान का दान करने से आत्माएं पुण्य कर्म का संचय कर लेती हैं। क्योंकि पथिक जनों की शान्ति के लिये जो स्थान अर्पण किये जाते हैं उन स्थानों के अर्पण से भी आत्मा पुण्य कर्म का संचय कर लेती हैं।

४. शयन पुण्य—शय्या के दान से आत्मा पुण्य कर्म का संचय कर लेती है अर्थात् जो धर्म स्थान नगरादि में लोगों के उपकार के लिये दे दिए जाते हैं उनके दान से भी आत्मा पुण्य कर्म का संचय करता है

५. वस्त्र पुण्य—जो आत्माएं शीतादि से पीड़ित हो रही हैं उनकी रक्षा के लिये वस्त्र दिये जाते तथा [illegible]

आत्माओं को वस्त्र प्रदान किए जाएं इससे भी आत्माएं पुण्य कर्म का संचय कर लेती हैं।

यदि उन लोगों को द्रव्य का दान दिया जाय तब तो कुकर्मादि के बढ़ने की सम्भावना की जा सकती है वस्त्रदान तो केवल उनके शरीरादि की रक्षा ही करता है इस लिये द्रव्य दान तो धार्मिक संस्थाओं को फलीभूत हो सकता है क्योंकि सुयोग्य संस्थाओं के संचालक उस द्रव्य का सदुपयोग कर सकते हैं।

अतएव द्रव्य दान धार्मिक संस्थाओं को दिया हुआ शुभ कर्मों के संचय करने वाला हो जाता है।

६ मनोपुण्य—अपने कर्मों के फल का विचार करते हुए किसी की वृद्धि को देखकर ईर्ष्याभाव न करना इसके द्वारा जीव पुण्यकर्म का संचय करलेते हैं सर्दव काल इसी बात पर विचार करते रहना चाहिए कि—जो जीव जिस योनि में उत्पन्न होता है वह अपने किये हुए कर्म के फलों का अवश्यमेव अनुभव करता है क्योंकि जिस प्रकार जीवों ने पूर्व जन्म में कर्म किये थे उन कर्मों का फल प्रायः उसी प्रकार अगले जन्म में भोगा जाता है। जैसे किसी के शुभ कर्मोदय होने से उसकी समार सम्बन्धी प्रत्येक वस्तु उन्नत दशा को प्राप्त हो रही है तब उस समय चाहे क्रोडों ही शत्रु खड़े हाजाएँ तब भी उसके शुभ कर्म के निरोध करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

प्रकार जिन आत्मा के अशुभ कर्मों का
है उनके दुःख निवृत्त करने के लिये यदि क्रोडों
ा के लिये कटिबद्ध हो जाएँ तब भी वे उनकी
ने में समर्थ नहीं होसकते।
सी प्रकार विचार करके किसी की वृद्धि को देखकर
साथ ईर्ष्या न करनी चाहिए तथा उसकी निंदा भी
करनी चाहिए।

किसी आत्मा के अत्यन्त अशुभ कर्मों का उदय
या है वह उन अशुभ कर्मोदय द्वारा परम रोग या
क तथा कारागृहादि में नाना प्रकार के दुःखों से पीड़ित
रहा है तब इस प्रकार की दुःखित आत्मा को अवलोकन
रने पर अपने मनमें शुभ भावनाओं को उत्पन्न करना
चाहिए।

जैसेकि—यदि मेरे में इनके दुःख निवृत्त करने की
शक्ति हो तो मैं इन को दुःखों से विमुक्त करदूं। एवं
उनकी दीन दशा को देखकर अपने मनमें करुणा भाव
उत्पन्न करना चाहिए इतनाही नहीं किन्तु अनिष्ट कर्मों
के फलों का अनुभव करते अपने मनमें पश्चात्ताप करना
चाहिए

तथा अपने मनमें [illegible]
न करना चाहिए [illegible]
आत्मा मन [illegible]

क्योंकि--किसी की वृद्धि को देखकर ईर्ष्या कर
और किसी की दीन दशा को देखकर आनंदित होना त
सदैव काल इस प्रकार के भावों को धारण करना कि-
जीवों को दुःखही उत्पन्न होता रहे इस से जीव मनद्वा
पाप कर्म को उपार्जन करलेता है।

इस प्रकार शुभ मनद्वारा पुण्यकर्म का संचय कि
जा सकता है।

७ वचनपुण्य जिस प्रकार शुभ मनसे पुण्यकर्म
संचय किया जाता है ठीक उसी प्रकार शुभ वाणी
बोलने से भी पुण्यकर्म का संचय होजाता है अर्थात् म
और प्रमाण पूर्वक वाणी का उच्चारण करना पुण्य उपा
करने का कारण बन जाता है किन्तु जो कठोर औ
स्नेह रहित वाणी का उच्चारण किया जाता है उससे प
कर्मका संचय हो जाता है इसलिये कठोर वाणी कदा
न बोलनी चाहिए इतनाही नहीं किन्तु किसी को गा
आदि भी न देनी चाहिए। देखिये! गाली के देने
एक तो अपना मुख अशुद्ध होजाता है दूसरे जिसको गा
दीजाई उसको परम दुःख होता है फिर भाग के लिये
[illegible]

प्रियवाणी के बोलने से तुम प्रत्येक जीव को अपना मित्र बना सकते हो और अप्रिय वाणी के बोलने से प्रत्येक जीव तुम्हारा शत्रु बन सकता है अतएव जब शुभवाणी के बोलने से जीवों से मित्रता हो गई और पुण्यकर्म का संचय भी होगया तब वाणी शुभही बोलनी चाहिए क्योंकि- अशुभ वाणी के बोलने से दोनों प्रकार की हानि निश्चित होती है जैसे कि लोगों से वैरभाव और पापकर्म का संचय। इसलिये कठोर वाणी कदापि न बोलनी चाहिए।

८ कायपुण्य -अपने शरीर को बुरे कर्मों से बचाते रहना इससे पुण्यकर्म का बंध किया जाता है जैसे कि-- चोरी का न करना, और हिंसा न करना, व्यभिचार न करना, किसीको न मारना, तमोगुण युक्त भोजन न करना, तथा मदिरा पानादि पदार्थों का आसेवन न करना इतना ही नहीं किन्तु किसी की भी अविनय न करना जब इस प्रकार अपने शरीर को वश किया जाएगा तब पुण्यकर्म का संचय होजायगा।

[illegible]

अतएव शरीर को अपने वश में आवश्यमेव रखना चाहिए तथा कौतूहल या भोंडी चेष्टाएँ कदापि न करनी चाहिएं ।

समय पर सैर या व्यायामादि करके शरीर को सैर में रखना चाहिए जिससे दोनों लोक में शुभ फल की प्राप्ति होजावे ।

८ नमस्कार गुण — अपने बड़ों को प्रातःकाल उठकर या यथा समय मिलने पर नमस्कार करना चाहिए क्योंकि जब यथायोग्य विनय कियाजाता है तब एकतो पुण्य कर्म का संचय होता दूसरे सदाचार की वृद्धि होजाती है ।

यह बात स्वाभाविक मानी जाती है कि जब एक व्यक्ति विनय पूर्वक बर्ताव करने लगता है तब उसको देखकर अन्य व्यक्ति भी विनय करने लगजाते हैं अतएव माता पिता विद्यागुरु वा ज्येष्ठ भाई आदि को नमस्कार करना चाहिए

[illegible]

इन का मूल कारण यही है कि—पहिले उनको विनय धर्म सिखाया ही नहीं जाता।

यदि बालक और बालिकाओं को पहिले ही विनय धर्म सिखाया जाता तब उनकी यह व्यवस्था न देखनी पड़ती। जब बालक और बालिकाओं को पहिले ही अविनय धर्म में प्रविष्ट करा दिया गया है तब फिर वे विनय धर्म किस प्रकार सीख सकते हैं। अतएव बच्चों को धार्मिक शिक्षाओं द्वारा पहिले ही विनय धर्म में प्रवेश करा देना चाहिए।

जब बच्चों को नमस्कार करना सिखला दिया जाएगा तब फिर वे प्रायः अविनय में प्रवेश नहीं कर सकेंगे।

नमस्कार करने से दो लाभ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं जैसे कि एक तो पुण्यकर्म का संचय दूसरे परस्पर प्रेम (प्रेम) और क्लेश की निवृत्ति जब प्रेम भावकी वृद्धि होगई तब फिर हरएक वस्तु वृद्धि पाने लगजाती है।

इसलिये यथायोग्य नमस्कार करना भी पुण्य बंधन का एक मात्र शास्त्र बतलाया गया है

[illegible]

साथ विनय करनी चाहिए; तथा देशी वा विदेशी–जनों के साथ किस प्रकार सद् वर्ताव करना चाहिए, मित्रों के साथ किस प्रकार सभ्य वर्ताव करना चाहिए तथा इतर जनों के साथ किस प्रकार प्रेम बढ़ाना चाहिए जब इस प्रकार से बच्चों को सुशिक्षित किया जायगा तब वे प्रायः अविनय से बचते रहेंगे जिस का परिणाम दोनों लोक में हितकर होगा।

इतना ही नहीं किन्तु सहपाठियों के साथ भी सभ्यता पूर्वक वर्तना चाहिए परस्पर शरीर का स्पर्श तो नितांत (बिल्कुल) न करना चाहिए क्योंकि—शरीर के स्पर्श से व्यभिचार के होजाने की संभावना की जासकती है अतएव सहपाठियों के साथ भ्रातृभाव से वर्तना चाहिए जब इस प्रकार परस्पर विनय से वर्ताव किया जायगा तब पुण्य कर्म का बंध और प्रेमभाव की वृद्धि होती चली जायगी।

अतः शास्त्रों में नमस्कार करना पुण्यकर्म के बन्धन का भी यह कारण बतलाया गया है

[illegible]

१. प्राणातिपात—जीवों की हिंसा करने से पाप कर्म का संचय किया जाता है किन्तु इतना विचार अवश्यमेव करलेना चाहिये कि हिंसा तीन प्रकार से मानी गई है जैसे कि मन से, वाणी से और काय से। मन से हिंसा वह होती है जो मन के द्वारा अशुभ विचार किए जाएं, वाणी से हिंसा उसका नाम है जो कठोर और रूक्ष वाणी बोली जाय काय से हिंसा वह है जो अपने शरीर द्वारा अन्य आत्माओं को दुःखित किया जाए तथा आप हिंसा करनी, औरों को हिंसा करने का उपदेश करना वा जिन आत्माओं ने अन्य आत्माओं को अपने अविचारित बल से दुःख दिया है उनके बल को अनुमोदन करना इस प्रकार से जो हिंसा की जाता है उस के द्वारा अशुभ कर्मों का बन्ध हो जाता है।

२. मृषावाद—जिस प्रकार हिंसा कर्म से अशुभ कर्मों का बंध माना गया है उसी प्रकार असत्य वचन के बोलने से पाप कर्म का बंध होता है साथ ही असत्य बोलने वाले का जगत् में विश्वास भी उठ जाता है कारण कि असत्य भाषण करने से आत्मा अपने निज गुण को छोड़ कर दुःख रूप सागर में डूबने का उपाय करती है अतः असत्य भाषण करना शास्त्रों में अधर्म का मूल धन प्रतिपादन [illegible]

३. अदत्तादान—[illegible]

आज्ञा उठा लेना चौर्य कर्म कहा जाता है इस कर्म के करने वालों के लिये ही कारागृह (जेलखाने) बने हुए हैं और इसी कर्म के करने वालों को नाना प्रकार के राजकीय पुरुषों द्वारा दंड दिये जाते हैं तथा यह कर्म ऐसा निन्दनीय है कि इस कर्म के करने वालों पर किसी को भी दया नहीं आती अतएव यह कर्म भी पाप कर्म का संचय करने वाला है।

५. मैथुन कर्म—विषय विकार के सेवन से भी पाप कर्म का संचय किया जाता है तथा गृहस्थों के नियमों में यह बतलाया है कि पुरुष को पर स्त्री का नियम हो और स्त्री को पर पुरुष का नियम हो इस प्रकार के नियम से गृहस्थाश्रम सदाचारयुक्त चला करता है यदि इससे विपरीत कार्य किया जाय तब एकतो लोकापवाद और दूसरे महापाप कर्म का बंध जिसका परिणाम परलोक में अत्यन्त दारुण रूप से भोगना पड़ता है। ब्रह्मचर्य के धारण से आत्म शक्ति का विकाश और मोक्ष में पता इस प्रकार के फल की प्राप्ति होती है

[illegible]

होता है क्योंकि क्रोधी पुरुष अपने आत्मिक गुणों का नाश कर डालता है जैसे अग्नि सर्व प्रकार के इन्धन को भस्म कर देती है उसी प्रकार क्रोध भी क्षमादि गुणों का नाश कर देता है तथा क्रोधी पुरुष से प्रीति का पालन तो हो ही नहीं सकता इतना ही नहीं किन्तु वह क्रोध के वशीभूत हुआ २ अपने प्रिय शरीर का भी नाश कर देता है।

७. मान—किसी पदार्थ का गर्व करना यह भी एक पाप कर्म का कारण है क्योंकि जब किसी वस्तु की स्थिरता ही नहीं तो फिर उन पदार्थों के मिल जाने पर अहंकार किस प्रकार किया जाए। वा अपने शरीर की भी स्थिरता नहीं है कि यह कब तक स्थिर वा निरोग दशा में रहेगा जब शरीर की यह दशा है तब कुल, बल, रूप, लाभ, ऐश्वर्यादि का अहंकार किस आशा पर किया जावे। अतएव अहंकार करना भी पाप कर्म के संचय करने का एक मुख्य कारण है।

८. माया—छल करना भी पाप कर्म के बन्धन का एक मुख्य कारण है छल करने से मित्रता का नाश [illegible]

यह पाप सर्वथा त्याज्य है क्योंकि इसी पाप से अन्य असत्यादि पापों का संग्रह हो जाता है।

९. लोभ—लालच करना यह भी एक पाप बंध का ही कारण है क्योंकि जो पुरुष न्यायवृत्ति को छोड़ कर लालच के वशीभूत हुआ २ अन्याय मार्ग में जाता है वे फिर नाना प्रकार के दुःखों का भी अनुभव करने लग जाता है अपितु कौनसा दुःख है जो लोभी को भोगना नहीं पड़ता अर्थात् लोभी सब दुखों के भोगने वाला होता है। तथा लोभ के वशीभूत हुआ२ जीव अपने धर्म कर्म को भी सर्वथा भूल जाता है।

१०. राग—संसारी पदार्थों पर अत्यन्त राग करना तथा कामराग, स्नेहराग और दृष्टिराग में ही मूर्च्छित रहना क्योंकि जब मन में विषयवासना की उत्पत्ति हो जाती है तब विषय जन्य (स्त्री आदि) पदार्थों पर राग किया जाता है अपितु जब परिवार वा बल वृद्धि की इच्छा उत्पन्न होती है तब स्नेहराग उत्पन्न हो जाता है इसी प्रकार जब मित्रों के बनाने की इच्छा उत्कट दशा में जागृत होती है तब दृष्टिराग उत्पन्न हो जाता है अपितु यह तीनों राग प्रायः पापकर्म के ही उत्पादन करने वाले कथन किए गए हैं किन्तु एक धर्म राग ही है जो आत्मा को पाप कर्म से बचा सकता है। अतः राग भी एक पाप कर्म के बंधन का कारण माना गया है।

११. द्वेष—जिस प्रकार राग बंधन का कारण है उसी प्रकार द्वेष भी पाप कर्म के बन्धन का एक मुख्य हेतु है क्योंकि जब किसी पदार्थ पर द्वेष किया जाता है तब मन में मलीन भाव अवश्यमेव उत्पन्न हो जाते हैं फिर उन्हीं भावों द्वारा अशुभ कर्मों के परमाणुओं का संचय किया जाता है अतएव द्वेष को भी सूत्रकारों ने पाप के बन्धन में कारण माना है।

तथा धर्म का वा देशाभ्युदय का जो अधःपतन होने लगता है उस में मुख्य कारण पारस्परिक द्वेष ही होता है क्योंकि द्वेषी आत्मा गुण को भी अवगुण रूप में वर्णन करने लग जाती है। जब द्वेष के द्वारा गुण अवगुण दीखने लगते हैं तब वह द्वेषी पुरुष दूसरों के विनष्ट होने के उपायों को सोचने लगती है जिन के कारण उसे फिर भी बहुत से पाप करने पड़ते हैं।

१२. कलह—परस्पर कलह करना तथा शांति भंग करने के उपाय करते रहना इस कर्म से जीव बहुत से पाप कर्मों का संचय करते रहते हैं [illegible] जिस स्थान पर [illegible]

[illegible]

उत्पन्न हो गए उन सब स्थानों का अधःपतन हो गया समझो। क्योंकि जहां पर प्रेम का निगड़ बन्धन माना जाता है। यदि उस स्थान पर भी क्लेश के अंकुर फूटने लग जावें तब वह प्रेम भी जल के लेप के समान हो जाता है।

अतएव सिद्ध हुआ कि क्लेश के द्वारा सर्व प्रकार से अधःपतन के कारण उपस्थित होजाते हैं जिस के कारण फिर जनता नाना प्रकार के दुःखों का अनुभव करने लग जाती है तथा यदि विचार करके देखा जाय तो बहुत से देशों का, घरों का वा जातियों का जो अभ्युदय रुक गया है उस का मूल कारण परस्पर क्लेश ही है।

तथा जब सासू और बहू का परस्पर क्लेश उत्पन्न हो जाता है तो फिर कौनसा कष्ट है जो घर में नहीं आजाता या जब धार्मिक संस्थाओं के कार्य कर्ताओं में परस्पर क्लेश उत्पन्न होजाता है तो फिर वे संस्थाएं किस प्रकार से अभ्युदय को प्राप्त होसकती है।

अथवा जब राजा और प्रजा में क्लेश के अंकुर फूटने लगजाते है तो फिर उस समय कौन २ से कष्ट शेष रह-जाते है जो उक्त दोनों को नहीं भोगने पडते अर्थात् सबही कष्ट भोगने पडते है।

तथा जब पिता पुत्र वा पति और पत्नी मे परस्पर क्लेश होने लगता है तब फिर कौन से अकार्य है जो नहीं

किये जाते अर्थात् क्रोध के कारण से सर्व प्रकार के झगड़ों के होने की संभावना की जासकती है।

परस्पर सम्बन्ध के टूटने का मुख्य कारण क्रोध ही होता है इसके कारण से सर्व प्रकार के अभ्युदय बंद होकर केवल कष्टों के समूह एकत्र होजाते हैं क्योंकि—क्रोध के कारण से परस्पर फूट और फूट के कारण से अभ्युदय का नाश होने से किसी भाषा कविने कहा है कि—"घरमें उगे घर बह जाए खेत में उगे सब कोई खाएँ वनस्पति की जाति में एक "फूट" नाम की वनस्पति होती है उसको लक्ष्य करके कवि कहता है कि इस वनस्पति का स्वरूप ऐसा है यदि यह घर में उत्पन्न होजावे तब घर खेत बन जाता है अर्थात् घर के अभ्युदय का नाश होजाता है तथा यदि यह खेत में उत्पन्न होजावे तो इसके फल को सब कोई खा लेता है अर्थात् यदि फूट घर में उत्पन्न होजाए तब फिर वह घर बस नहीं सकता और यदि यह फूट वनस्पति खेतों में उत्पन्न हो तब लोगों के खाने के काम में इसके फल आते हैं अतएव क्रोध का सर्वथा परित्याग करना चाहिए।

[illegible]

दूसरे का नाम रखते हैं जैसे कि—यह अमुक कार्य मैं नहीं किया है। इसने वा उसने किया है इस प्रकार कह दें से बड़े भारी पापकर्म का आत्मा के साथ बंध पड़जाता क्योंकि—जिसपर असत्यारोपण कियागया उसकी आत्म उस बात को सुनकर परम दुःख मानती है केवल दुःख ही नहीं किन्तु वह किसीसमय आत्मघात वा कहनेवाले के मार के भाव भी धारण बनाये रखता है तथा कहने वाले के नाम प्रकार के गुप्त विचार लोगों में प्रकट करदेता है । अतए किसी आत्मापर असत्यारोपण नहीं करना चाहिए इसपा के द्वारा आत्मा मलीन हो जाती है तथा कौनसा पाप क है जो ऐसी क्रियाओं से बांधा नहीं जासकता।

जब किसी आत्मा का उक्त दोष सेवन करने व अभ्यास पड़ जाता है फिर वह आत्मा अन्य जगद्वास जीवों को भी तुच्छ रूप से समझने लगजाती है और अन्य पुरुष उसको विश्वासपात्र नहीं समझते अपितु उस अलग रहने की चेष्टा करते हैं क्योंकि—वे जानते हैं कि— इसका स्वभाव दूसरों पर झूठ कलंक देने का होगया कहीं ऐसे न हो कि—यह हम पर भी असत्य दोषारो पण कर देवे अतएव इससे पृथक ही रहना अच्छा ऐसा पुरुष अपने दोष दूर करने के लिये आगे के छिद्रह देखता रहता है। इतना ही नहीं किन्तु वह सब प्रकार के अकार्य करने में उद्यत रहता है जिसका परिणाम उस

आत्मा को इस लोक और परलोक में दुःख रूप भोगना पड़ता है तथा च पाठ—

जेणं भंते ! परं अलिएणं असब्भूतेणं अब्भक्खाणेणं अब्भक्खाति तस्सणं कहप्पगारा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! जेणं परं अलिएणं असंत वयणेणं अब्भक्खाणेणं अब्भक्खाति तस्सणं तहप्पगारा चेव कम्मा कज्जंति. जत्थेवणं अभिसमागच्छंति तत्थेवणं पडिसंवेदेंति ततो से पच्छा वेदेंति सेवं भंते २ त्ति ।

(भगवती सूत्र शतक ५ वां उद्देशा ६ ठा सू० २१८)

भावार्थ—श्री गौतम स्वामी श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामीजी से पूछते हैं कि हे भगवन् ! जो असद्भूत असत्य भाषण के द्वारा किसी जीव पर दोषारोपण करता है वह किस प्रकार के कर्मों का संचय करता है ? इस प्रश्न के उत्तर में श्री भगवान् कहते हैं कि हे गौतम ! जो किसी दूसरे को असत्य असद्भूत वचन के द्वारा कलंकित करता है वह [illegible]

प्रकार उसने अपने से पृथक् जीवों को कलंकित किया था उसी प्रकार उस को लोग कलंकित करते हैं इतना ही नहीं किन्तु वह कलंकित होकर ही मृत्यु प्राप्त करता है।

अतएव किसी आत्मा को भी कलंकित न करना चाहिये क्योंकि इस कर्म के द्वारा बड़े अशुभ कर्मों का बंध पड़ जाता है जिसका परिणाम कई जन्मों तक प्राणियों को दुःखरूप भोगना पड़ता है।

१४. पैशुन्यता—चुगली करना यह भी एक महापाप है क्योंकि जो आत्माएं नीच वृत्ति वाली होती हैं तथा जिनकी आत्मा सन्मार्ग से पतित हो गई है इतना ही नहीं किन्तु जो आत्मा सद्विचार से रहित हैं वे ही चुगली के मार्ग में गमन करती हैं चुगली के द्वारा पुण्य कर्म इस प्रकार से आत्मा से पृथक् हो जाता है कि जिस प्रकार ऊंचे स्थल से पानी नीचे गिरने लगता है। चुगली करने वाले संसार में विश्वास पात्र नहीं गिना जाता अपितु जगत् में वह अविश्वास के उत्पादन करने वाला होता है।

धर्म से उस आत्मा की रुचि तो प्रायः हो ही नहीं सकती अतः इस पाप से बचने का विवेक अवश्य धारण करना चाहिए क्योंकि यावन्मात्र जग में या परस्पर क्लेश उत्पन्न हो रहे हैं जिनके प्रभाव से लोग नाना प्रकार के दुःखों का अनुभव कर रहे हैं उन क्लेशों के उत्पादन में चुगली भी एक मुख्य कारण है

अतएव यह पाप कर्म प्राणी मात्र के त्यागने योग्य है इतना ही नहीं किन्तु जो कोई किसी की चुगली करता भी हो उसे भी न सुनना चाहिये। धर्म वा व्यावहारिक शुद्धि तभी हो सकती है जब उक्त कर्म का त्याग किया जाय।

१५. पर परिवाद—संसार की अवनति का कारण अभ्युदय के मार्ग में विघ्न और क्लेष के उत्पन्न करने हारी निन्दा भी एक महापाप है निन्दक जन धर्म और कर्म दोनों के नाश करने वाले होते हैं।

परलोक में निन्दकों की बड़ी अशुभ गति कथन की गई है चांडालों की गणना में निन्दकों का भी नाम आ गया है दूसरों के अन्तःकरण के मल खाने वाले निन्दक जन ही कथन किए गए हैं।

दुर्जनों में उनका नाम अंकित हो चुका है धर्म पथ में वे राहु के समान अन्धकार करने वाले होते हैं सत्य और शील का तो वे सर्वथा नाश कर देते हैं उनकी आत्मा सदैव काल अन्य जीवों के छिद्रान्वेषी हो जाती है जैसे पिपीलिका (कीड़ी) किसी सुन्दर भीत (दीवार) पर गमन करती हुई किसी छिद्र के देखने को उत्कण्ठा ही धारण किये रहती है ठीक उसी प्रकार निन्दक गुणवान को देख कर उसके अवगुण के देखने का यत्न करता रहता है एवं जैसे चालनी छालनी चन को नीचे गिरा कर आनस को अपने पास रख लेती है ठीक उसी प्रकार निन्दक गुण को

छोड़ कर अवगुण को अपने पास रखता है तथा जिस प्रकार शूकर (सुअर) मल भक्षण करता है उसी प्रकार निन्दक भी अन्य आत्माओं के दोष रूपी मल को ग्रहण करने लगता है।

जिस ग्राम वा नगर में निन्दक जनों की संख्या अधिक बढ़ जाय वहां पर धर्म और पुण्य का काम ही क्या है? क्योंकि जहां पर मुर्दार (मृतक शरीर) खाने वाले तथा लम्बी २ जांघों वाले पक्षियोंका समाज एकत्र हो गया है फिर उस स्थानपर हंस मोर तोते और मेना आदि के एकत्र होने की क्या आवश्यकता है इसी प्रकार जिस स्थान पर निन्दकों की समाज फल फूल रही हो उस स्थान पर सज्जनों के रहने की क्या आवश्यकता है।

जिस प्रकार वेश्याओं की गलियों में पतिव्रता धर्म के पालन करने वाली स्त्रियों के रहने का कोई ठिकाना नहीं होता ठीक उसी प्रकार निन्दकों की समाज में धर्मात्माओं के रहने का कोई स्थान नहीं है।

क्योंकि यावन्मात्र घरों में क्लेश उत्पन्न हो रहे हैं उस का मूलकारण परस्पर निन्दा और चुगली है।

अतएव, हे सुज्ञ पुरुषो! किसी भी प्राणी की निंदा न करनी चाहिए यदि उसमें कोई दोष दीख पड़ता हो तो उस दोष को दूर करने के लिये उस व्यक्ति को प्रेम पूर्वक एकान्त स्थान में शिक्षित करना चाहिए

यदि वह उस शिक्षा को स्वीकार न करता हो तो उस कर्म की निंदा तो अवश्य की जाती है न तु उस व्यक्ति की। क्योंकि चोरी कर्म सर्दैव काल बुरा है न तु चोर क्योंकि- जब किसी चोर ने चोरी का कर्म छोड़ दिया तब चोर तो साधु समाजमें आगया परन्तु चोरी तो फिर भी बुरी ही कथन की जाएगी हां-जिसने चोरी कर्म छोड़ दिया है वह अच्छा अवश्य होगया है इस बात को ठीक समझते हुए निंदा कर्म का त्याग कर देना चाहिए।

१६. रति अरति—सांसारिक पदार्थों के मिलने से प्रसन्न होजाना फिर उनके वियोग से दुःखित हो उठना यह भी एक पाप कर्म के बंधन का मुख्य कारण है क्योंकि-यह पदार्थ किसी के भी स्थिर नहीं रहे हैं न अब रहते हैं और न आगे रहेंगे अतएव इन पदार्थों में अति मूर्छित हो जाना यह भी एक अज्ञानता है जो आनंद ज्ञान की समाधि द्वारा होता है उसका अनंतवां भाग भी पदार्थों की उपलब्धि से नहीं आसकता।

क्योंकि—पदार्थों के भोगने का पूर्व भाग तो अति सुखप्रद होता है परन्तु उसका अन्त उक्त पदार्थों का दुःखप्रद है [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

होजाता है ।

जिस प्रकार ऋण (कर्ज़ा) का पूर्व भाग अति सुखदायी प्रतीत होता है परंच उत्तर भाग उस ऋण का अति दुःखप्रद माना गया है अर्थात् जब कोई किसी से ऋण (कर्ज़ा) लेता है तब वह अपने मन में जानता है कि—मेरा काम अब तो अच्छा चल गया है आगे जैसा होगा देखा जायगा अपितु जब ऋण बढ़ गया फिर उस वृद्धि युक्त ऋण को देना पड़ता है वह समय अत्यन्त भयानक माना जाता है सो इसी प्रकार पदार्थों के भोग विषय में भी जानना चाहिए ।

अतएव पदार्थों के मिलने पर वा बिछुड़ने पर जो रति और अरति की जाती है यह भी एक महा पाप के बंधन का कारण है जिस का परिणाम प्राणीमात्र को दुःख रूप भोगना पड़ता है ।

१७ माया मृषा—छल पूर्वक असत्य बोलना यह भी एक महा पाप के बंधन का मुख्य कारण है क्योंकि जो आत्मा छलिया है और कपट करने में अति निपुण हो रही है इतना ही नहीं किन्तु सदैव काल छल करने में ही लगी रहती है और अपना छल को छुपाने के लिए अनेक [illegible] व्याधियें भी [illegible] है

हो सकते हैं। अतएव सिद्ध हुआ कि—उक्त कृत्य के द्वारा भी पाप कर्म का बंधन किया जाता है॥

१८ मिथ्यादर्शनशल्य—वस्तु के स्वरूप को यथावत् न जानना यह भी एक बड़ा भारी पाप है क्योंकि—जो लोग वस्तुके स्वरूप को यथावत् नहीं जानते वे कुमार्ग में फंसे रहते हैं उसी कारण से वे पाप मार्ग में निमग्न हो जाते हैं जैसे कि—देव गुरु और धर्म के स्वरूप को ठीक ठीक न जानना यह भी एक पाप के संचय का प्रसिद्ध कारण है।

जब रागी द्वेषी कामी क्रोधी इत्यादि अवगुण युक्त देव माने जाते हैं तब जो उन देवों की पापमय शिक्षा है उसके अंगीकार करने से केवल पाप कर्म का ही उपार्जन किया जा सकता है तथा जब त्याग वृत्ति से रहित स्त्री धन और भूमि से युक्त इस प्रकार के पुरुषों की गुरु संज्ञा बन जाए तब फिर पाप कर्म के उपार्जन का क्या ठिकाना है क्योंकि जिस प्रकार के गुरु माने जाएंगे उसी प्रकार की शिक्षा उनसे प्राप्त हो सकती है।

अथवा जब हिंसायुक्त सब कार्यों को धर्म माना जाता है तब दान शील तप और भाव रूप धर्म के पालन करने की क्या आवश्यकता है अतएव देव के मानने वालों [illegible] सब प्रकार के दोषों से विमुक्त हो गुरु वे [illegible] सकते हैं जो संसार की वासनाओं से छूटे हुए हों

साथ ही अहिंसा सत्य अदत्त ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह व्रत के धारण करने वाले हों। इसी प्रकार धर्म वही मानना युक्ति संगत सिद्ध होता है जिस में अहिंसा तत्व अपनी प्रधानता रखता हो तथा दान शील तप और भाव भली प्रकार से पालन किये जाते हों।

अतः मिथ्या दर्शनयुक्त जीव अज्ञानता के वश होता हुआ हर एक पदार्थ को विपरीत बुद्धि से देखता है इस लिए वह बड़े भारी पाप कर्म का उपार्जन कर लेता है सो इस रीति से १८ प्रकार से जीव पाप कर्म को बांध कर फिर नाना प्रकार के दुःखों का अनुभव करते हैं।

कर्मों की प्रकृतियों को ऐसे ठीक समझ कर आत्मा में अशांति उत्पन्न नहीं करनी चाहिए. नां ही धर्म पथ से विचलित हो कर किसी देव या देवियों की पापमय सुखना सुखनी चाहिए क्योंकि-जब वे देव या देवियें स्वयं हिंसक हैं तो भला फिर औरों की वे क्या रक्षा कर सकते हैं इस बात को ठीक समझ धर्म कार्यों में ही दृढ़ता करनी चाहिए क्योंकि दान शील तप और शुभ भावनाओं द्वारा सर्व प्रकार के कष्ट दूर हो सकते हैं तथा भावपूर्वक श्री परमेष्ठी महामंत्र का जाप सब प्रकार के कष्टों को दूर करने वाला है अत [illegible] नमस्कार मंत्र का पाठ करना चाहिए जिससे सब प्रकार के संकट दूर हो जावें

सातवां पाठ
धर्म में दृढ़ता विषय

प्रिय बालक और बालिकाओ! कर्म विषय को ठीक समझ कर फिर धर्म में परम दृढ़ता धारण करनी चाहिये क्योंकि धर्म एक ऐसी वस्तु है जो मनोवांछित वस्तुओं के प्राप्त करने में समर्थता रखती है जब धर्म द्वारा मोक्ष तक के सुख प्राप्त होसकते हैं तो भला अन्य वस्तुओं का कहना ही क्या है? स्वर्ग और मनुष्य लोक के सुख तो प्रत्येक प्राणी ने अनंतवार अनुभव कर लिये हैं परन्तु मोक्ष सुख पुण्य कर्म के प्रभाव से ही उपलब्ध हो सकते हैं अहिंसा धर्म के प्रभाव से आत्मा को मोक्ष के सुख भी उपलब्ध होसकते हैं जो सादि अनंत पद वाले हैं।

इस प्रकार कर्म वा पुण्य प्रकृतियें तथा धर्म इत्यादि के स्वरूप को जानकर यदि देवगण भी धर्म से विचलित करना चाहें तो धर्म से पतित न होना चाहिए क्योंकि देवगण भी धर्मात्माओं की सदैव पूजा करते हैं और उनको भावों से नमस्कार करते हैं तो फिर धर्म पथ से क्यों विचलित होना चाहिए क्योंकि जब कल्प वृक्ष का आश्रय ले लिया तब अन्य वृक्षों के आश्रय की क्या आवश्यकता है जब कल्प वृक्ष के द्वारा सब इच्छाएं पूरी

सातवां पाठ

धर्म में दृढ़ता विषय

प्रिय बालक और बालिकाओ ! कर्म विषय को ठी
समझ कर फिर धर्म में परम दृढ़ता धारण करनी चाहि
क्योंकि धर्म एक ऐसी वस्तु है जो मनोवाञ्छित वस्तु
के प्राप्त करने में समर्थता रखती है जब धर्म द्वारा मो
तक के सुख प्राप्त होसकते हैं तो भला अन्य वस्तुओं
कहना ही क्या है ! स्वर्ग और मनुष्य लोक के सु
तो प्रत्येक प्राणी ने अनंतवार अनुभव कर लिये हैं पर
मोक्ष सुख पुण्य कर्म के प्रभाव से ही उपलब्ध हो सकते
अहिंसा धर्म के प्रभाव से आत्मा को मोक्ष
सुख भी उपलब्ध होसकते हैं जो सादि अनंत प
वाले हैं ।

इस प्रकार कर्म वा पुण्य प्रकृतियें तथा धर्म इत्या
के स्वरूप को जानकर यदि देवगण भी धर्म से विचलि
करना चाहें तो धर्म से पतित न होना चाहिए क्यों
देवगण भी धर्मात्माओं की सदैव पूजा करते हैं औ
उनको भावों से नमस्कार करते हैं तो फिर धर्म पथ
क्यों विचलित होना चाहिए क्योंकि जब कल्प वृक्ष क
आश्रय ले लिया तब अन्य वृक्षों के आश्रय की क्य
आवश्यकता है जब कल्प वृक्ष के द्वारा सब इच्छाएं पूर्

वनवास के कष्टों को झेला श्रीमती पतिव्रता धर्म के पालन करने हारी सती सीता को परम कष्टों का सामना करना पड़ा तो क्या यह कर्मों के फल नहीं हैं अवश्य हैं इसी प्रकार पुरुषोत्तम श्री कृष्ण भगवान के विषय में कतिपय दुःख प्रद घटनाएं हो चुकी हैं।

धर्मावतार पुरुषोत्तम तीर्थंकर श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने साढ़े बारह वर्ष पर्यन्त परम कष्टों को सहन किया जिन कष्टों के सुनने से रोंगटे खड़े होजाते हैं सारांश इतना ही है कि जिन महर्षियों के नाम स्मरण से कष्ट दूर होजाते हैं कर्मों के फल को उन्हें भी भोगना पड़ा। अतएव सिद्ध हुआ कि कष्टों के आजाने पर धर्म पथ से कदापि विचलित न होना चाहिए।

जो व्यक्ति धर्म मार्ग में अनभिज्ञता रखती हैं वे जब मुसलमान लोगों के ताज़िये निकलते हैं तब अपने बच्चों को उनके नीचे से निकलवाती हैं जिसका फल वे अपने मन में समझती हैं कि हमारे बच्चे की आयु दीर्घ हो जायगी। भला विचारने की बात है कि जब जिन के ताज़िये निकाले जाते हैं संग्राम में मारे के मारे जा चुके हैं तो भला फिर वे तुम्हारे बच्चों की दीर्घायु कैसे कर सकेंगे। क्या जब वे उनकी रक्षा न कर सकते हैं तो फिर वे तुम्हारी रक्षा किस प्रकार करेंगे

ये सब अज्ञानता के लक्षण हैं जो इस प्रकार

के धर्म विरुद्ध कार्य पुरुष स्त्री को कभी न करने चाहिए।

मन में इस बात का भी विचार होना चाहिए कि करोड़ों मुसलमान लोग और ईसाई (क्रिश्चियन्) लोग जो तुम्हारे देवों की सुखना नहीं सुखते हैं क्या उन का अस्तित्व संसार में नहीं रहा है ? क्या उनकी प्रति दिन वृद्धि नहीं हो रही है ?।

इस लिए इस भ्रम भूत को छोड़ कर धर्म में दृढ़ता और धैर्य का अवलम्बन करना चाहिए।

क्योंकि-उन पीरों के पास जो उनके सेवक जन रहते हैं क्या उनको कभी दुःख नहीं हुआ है तथा तुम्हारी सुखना से जो लोग निर्वाह करते हैं क्या वे पीर उनको सुखी नहीं कर सकते।

अतः इस बात को सदैव काल सोचते रहो कि जो प्राणी संसार चक्र में जन्म मरण कर रहा है वे सब अपने किए हुए कर्मों के फल को भोग रहा है किसी की भी यह शक्ति नहीं है कि-कर्मों के बिना भोगे छुटकारा करा सके इस बात पर दृढ़ता रखते हुए उक्त क्रियाओं से बचना चाहिए।

बहुत सारे अज्ञात जन अपनी शांति के लिए उन पीरों के नाम पर जीवों के बध की सुखना कर बैठते हैं सो यह भी उनकी अज्ञानता का मुख्य लक्षण है क्योंकि-जीव हिंसा से कभी भी शांति नहीं हो सकती

किसी कवि ने ठीक कहा है कि–

सुख दीयां सुख होत है
दुःख दीयां दुःख होय।
आप हने नहीं अवरकूं
तो अपन हने न कोय ?

क्योंकि–जब बिना अपराध किए किसी अनाथ जीव के प्राण लूट लिए तो भला इस से बढ़ कर पाप तथा अन्याय और क्या हो सकता है। साथ में यह भी याद रखो कि–जब किसी से ऋण (कर्ज़) पर रुपए लेने हों तो बिना सूद लिए वह नहीं छोड़ता अतएव जिन प्राणी के प्राण ले लिए हैं तो भला वह बिना प्राण लिए कैसे छोड़ देगा। हां–यह बात अवश्य है कि वह अपने समय पर बदलारूप प्राण लेगा सो यह हिंसा एक प्रकार का ऋण है इस लिए इस प्रकार की सुखनाएं कभी भी सुखनी नहीं चाहिएं।

परंच यदि सुखना सुखनी भी हो तो धर्म वृद्धि के लिए मन में सत्य प्रतिज्ञाएं धारण कर लेनी चाहिएं जैसे कि–अमुक दुःख की शांति पर इतने जीवों को अभय दान दूंगा तथा अमुक धार्मिक संस्थाओं की इतने द्रव्य से रक्षा करूंगा तथा धर्मोपकरण वा श्रुतदान सुपात्र दानादि के विषय द्रव्य व्यय करूंगा तथा स्वधर्मी वत्सलता वा

अनाथों की रक्षा के लिए इतना द्रव्य व्यय करूंगा तथा जो पशु दुःखित वा अनाथ हैं उनकी अमुक विधि से पालना करूंगा वा धार्मिक पुरुषों की यथोचित सेवा करूंगा जैसे कि-तपस्या कराकर फिर उनको सत्कार पूर्वक पारणादि कराना यह यथोचित धार्मिक क्रिया कही जाती है इस प्रकार के भावों से उभय लोक में प्राणी शुभ कर्मोदय से सुखों का अनुभव कर सकते हैं न तु जीव हिंसा से कभी सुख उपलब्ध हो सकते हैं।

अतएव धर्म में दृढ़ता रखते हुए और कर्मों के स्वरूप को यथावत् जानते हुए उक्त क्रियाओं के करने से बचना चाहिए हां यह आवश्यकीय बात है कि-किसी की निंदा मत करो किन्तु कर्मों के फल को ठीक समझते हुए पुरुषार्थ द्वारा उन कर्मों के क्षय करने के मार्ग को अन्वेषण करते रहो इस से सब प्रकार की शांति हो सकती है क्योंकि—जिस प्रकार जल सिंचन से वृक्ष प्रफुल्लित हो जाता है उसी प्रकार धर्म क्रियाओं के करने से आत्मा विकसित होती है फिर वह आत्मिक गुणों के अनुभव करने वाली बन जाती है जिसमें सम्यग्दर्शन [illegible] भावना [illegible] रहता [illegible]

आठवां पाठ ।

देव और देवियों का विषय

प्रिय सुज्ञ पुत्रो ! आत्म कल्याण करने के लिये वा संकटों के दूर करने के वास्ते श्री वीतराग प्रभु अर्थात् देवाधिदेव का जाप करना चाहिए क्योंकि— श्री देवाधिदेव के जाप से अन्तःकरण की शुद्धि के अतिरिक्त साथ ही पुण्य कर्म का अंकुर उत्पन्न हो जाता है जिससे प्राणी इस लोक वा परलोक में सुख रूप फल भोगने लगता है अतएव सदैव काल श्री भगवान का जाप करना चाहिए ।

जिन आत्माओं ने देवाधिदेव प्रभु की शरण छोड़ कर हिंसक क्रियाओं में अपने मन को लगा लिया है वे प्राणी धर्म से पतित होकर सब प्रकार के सुखों से भी वंचित रह जाते हैं क्योंकि आत्मकल्याण वा सांसारिक सुख अहिंसा धर्म के माहात्म्य से ही उपलब्ध हो सकते हैं न तु हिंसा के करने से

शास्त्रों में लिखा है कि -देवों की [illegible] है अर्थात् [illegible] [illegible] उत्पन्न हुए हैं अतः देवों [illegible] शरण लेनी चाहिए

अपितु [illegible] धर्म [illegible]

हैं वे हिंसक देव और देवियों की सुस्तना देने में अपना कल्याण समझते हैं यह उन की बड़ी भारी भूल है क्योंकि—जिन देव या देवियों के आगे हज़ारों पशु बलि दिये जाते हैं और रुधिर से भूमि लिप्त हो जाती है, तो भला इस प्रकार की क्रियाओं से उनसे शांति की आशा रखना कितनी बड़ी अज्ञानता की बात है तथा देव या देवियें स्वयं हिंसक हैं वे भला शांतिप्रद कैसे हो सकती है यदि ऐसे कहा जाए कि—वे देव वा देवियें उक्त क्रियाओं के करने से ही प्रसन्न होते हैं तो यह भी युक्ति-युक्त नहीं है क्योंकि—इस प्रकार की क्रियाओं के किये जाने पर भी सांसारिक आत्माओं को मन इच्छित शांति की प्राप्ति नहीं होती परंच इस से विपरीत देखने में आता है जैसे कि—जो उन देवों की उपासना नहीं करते उन की दशा अन्य की अपेक्षा अच्छी दृष्टिगोचर होती है तथा जब देवी वा देवों को उक्त हिंसा की इच्छा रहती है तो फिर वे अपनी शक्ति द्वारा क्यों नहीं उन अनाथ जीवों के प्राण हरण कर लेते।

अतएव इस प्रकार के देव वा देवियों की सुस्तना कदापि न करनी चाहिये अपितु उस घोर हिंसा का निषेध करना चाहिये जिससे यह हिंसा बंद हो जाय।

यह हिंसा की प्रणाली नास्तिक वा हिंसक लोगों की प्रचलित की हुई है इस प्रणाली को सर्वथा बंद

करने का पुरुषार्थ करना चाहिये विषयी लोगों ने देवी देवताओं के नाम पर असंख्य पशुओं के प्राण ले लिये और देश में घोर हिंसा कांड आरम्भ कर दिया जिसके कारण देश वा धर्म का अधः पतन हो गया क्योंकि यह बात स्वाभाविक मानी गई है कि अहिंसा धर्म के बिना स्वीकार किये निर्वैरता कभी नहीं हो सकती बिना निर्वैरता के सर्वथा शान्ति नहीं है तो बिना शान्ति प्रेम भाव का संचार नहीं हो सकता इस बात को सब लोग मानते हैं कि प्रेम बिना वृद्धि (अभ्युदय) नहीं हो सकता तो जिन आत्माओं का स्वभाव पशु वध करने का हो गया हो उन के साथ प्रेम भाव का संचार किस प्रकार हो सकता है अर्थात् कदापि नहीं।

इस लिये काली देवी या ज्वालामुखी का मन्दिर देखिये जिनके आगे पशु वध होता है उन की तुलना तो दूर रही परन्तु आर्य पुरुषों वा आर्य महिलाओं को वह भूमि भी स्पर्श करने योग्य नहीं है।

अपितु हिंसा के बन्द कराने के लिये वर्तमान [illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

आर्य व्यक्तियों का तो हृदय करुणाभाव से आर्द्र रूपता को धारण कर लेता है अर्थात् उनका हृदय दया से भरा हुआ करुणा युक्त हो उठता है। साथ ही इस में यह भी तर्क उत्पन्न होता है कि जब हिंसक क्रियाओं के करने से ही शान्ति उत्पन्न होती है तब तो परस्पर मैत्री भाव माता पिता आदि की सेवा ईश्वर स्मरण अभयदान शील,तप और भाव यह सब क्रियाएं मिथ्या हो जाएंगी।

अतएव इस मिथ्या भ्रम को छोड़ कर आत्म कल्याण और दया धर्म की ओर झुकना चाहिये।

इतना ही नहीं किन्तु जिस प्रकार जीव दया प्रचारणीसभा आगरा ने अनेक स्थानों पर हो रही घोर हिंसा का प्रतिरोध किया और सदा के लिये हिंसा कांड उन स्थानों से हट गया उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को अपने पुरुषार्थ द्वारा जो देवी और देवताओं के नाम पर हिंसा हो रही है उसे बन्द कराना चाहिये।

हम इस बात पर माध्यस्थता पूर्वक विचार करते हैं कि हिन्दू समाज की कैसी टेढ़ी चाल है कि स्वयं अहिंसा धर्म को मानते हुए अपने देव और देवियों को हिंसक बना रहे हैं।

इसी लिये जो लोग अहिंसा धर्म को मानते हुए देव और देवियों के सामने पशुओं की बलि देते हैं वे अनुचित वर्त्ताव करते हैं। कैसे शोक का स्थान है कि

तुम लोगों की सुखना के लिये वे विचारे अनाथ पशु अपने प्रिय प्राणों से हाथ धो बैठते हैं।

और तुम लोग इस दुष्कृत्य से अपने मन में प्रफुल्लित होते हो कई स्थानों में पंडे (ब्राह्मण) लोग देवी और देवताओं के सामने बकरे के कान (कर्ण) को छेदन उन के रुधिर से यात्रियों के मस्तक में तिलक करते हैं सो यह प्रथा भी आर्य जनता के लिये घृणास्पद है। पुरुष को कभी भी इस प्रकार के वर्ताव न करने चाहियें, क्योंकि इस प्रकार की क्रियाओं से निर्दयता बढ़ जाती है और फिर यह प्रथा बढ़ कर असंख्य जीवों की प्राणघातक बन जाती है।

अतएव इस प्रथा का घोर विरोध करना चाहिये अपितु मन में यह भाव सदा बने रहने चाहिये कि जीवोंने जो जो कर्म किए हुए हैं वे अवश्यमेव भोगने पड़ेंगे इन कर्मों से विमुक्त करने के लिये केवल एक धर्म ही कार्य साधक हो सकता है अन्य कोई भी पदार्थ इनसे विमुक्त करने में सहायक नहीं होता।

[illegible]

दिया है परन्तु उक्त सूत्रों में कहीं भी हिंसक बलि का विधान नहीं किया गया अतः उनके सामने जीव हिंसा करना युक्ति संगत नहीं है किन्तु अन्याय है सो इस प्रकार के हिंसक देव और देवियों के नाम पर जहां हिंसा होती हो सुखना तो उनकी दूर रही परन्तु वहां जाना भी न चाहिए।

हिंसा के कार्यों की अनुमोदना करने से भी महान् अशुभ कर्मों का बन्धन पड़ जाता है जिस के द्वारा कई जन्मों तक दुःखों का अनुभव करना पड़ता है।

इसके इलावा यह भी निश्चित नहीं है कि सुखना से अवश्यमेव ही शान्ति हो जायगी एक स्थान की घटना है कि किसी वैश्य ने अपने पुत्र की रक्षा के लिये कुछ सुखना सुखी थी वह वैश्य फिर पुत्र को लेकर उस देवी के स्थान पर सुखना उतारने के लिये गया उस ने वहां जाकर अपनी सुखना के अनुसार क्रिया करके अपने घर की ओर रास्ता लिया मार्ग में एक नदी बहती थी उसका जल बड़े वेग से चल रहा था अत्यन्त वर्षा के कारण उसमें नूतन पानी की बाढ़ और भी आ गई जब वह वैश्य देवी के संघ के साथ नदी से पार होने लगा तब उसके बालक का हाथ उस के हाथ से छूट गया वह बालक पानी में बह गया बहुत यत्न करने पर भी उसके प्राण न बच सके उस वैश्य के एक ही पुत्र था वह रोता पीटता अपने घर में आ गया

अब पाठकगण! देवी व देवों की रक्षा विषय स्वयं विचार कर सकते हैं कि वे अपने भक्तों के साथ कैसी भर वत्सलता कर रहे हैं।

अतः मिथ्या भ्रमों को छोड़ कर दान शील तप और भावना के द्वारा ही आत्म कल्याण करने के लिये शान्ति की आशा रखनी चाहिये।

क्योंकि—जीवाभिगम सूत्र में श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से गौतम स्वामी जी प्रश्न करते हैं कि—हे भगवन्! समुद्र का जल जंबू द्वीप के मनुष्यों पर उपद्रव क्यों नहीं करता इस प्रश्न के उत्तर में श्री भगवान् ने यही प्रतिपादन किया कि हे गौतम! धर्मात्माओं के धर्म के प्रभाव से और पुण्यात्माओं के पुण्य के प्रभाव से लवन समुद्र का जल जंबू द्वीप के वासी मनुष्यों पर उपद्रव नहीं कर सकता।

सो इस कथन से स्वतः सिद्ध हो जाता है कि-कष्टों के दूर करने के लिये धर्म या पुण्य कर्म ये दोनों ही मार्ग हैं परंतु हिंसा आदि तो कष्टों के लाने का मार्ग है इस लिये जिन के स्थानों पर हिंसा होती भी हो उन्हें दूसरों को [illegible] दूर करें। [illegible]

इस प्रकार से उक्त समाज के द्वारा जो देवी देवताओं के नाम पर घोर हिंसा कांड होता था उसे बंद कराया गया इसी प्रकार अन्य सज्जनों को भी योग्य है कि जिन २ स्थानों पर इस प्रकार के कार्य होते हों वहां वहां अपने सत्य पुरुषार्थ द्वारा बंद करने या कराने की चेष्टाएं करते रहें इस प्रकार करने से अपने आप शांति क्या- -परंच सर्व जनता में शांति हो सकती है अहिंसा धर्म में दृढ़ता रखने वाले सज्जनगण अपने धर्म देवगुरु और धर्म में श्रद्धा रखते हुए उक्त हिंसक क्रियाओं के करने के भाव कदापि धारण न करें ।

क्योंकि-जब पंच परमेष्ठी का जाप आत्म कल्याण शांतिप्रद है तो भला फिर हिंसक क्रियाओं के करने की क्या आवश्यकता है जब इस बात पर भी दृढ़ विश्वास है कि जिस प्रकार जीवों ने कर्म किये हैं उनका शुभाशुभ फल अवश्यमेव भोगना पड़ेगा हां आर्त्त प्रतिकार करना या कराना यह मनुष्यों का एक व्यावहारिक मुख्य कार्य है परन्तु दुःख वा सुख यह सब कर्माधीन हैं इन बातों

देखो, जो महात्मागण किसी भी रोग का प्रतिकार नहीं करते क्या उनका जीवन इस सृष्टि पर नहीं है क्या उनकी आत्मा देवी वा देवताओं की पूजना के न पूजने से सदा दुःखी रहा करती है कदापि नहीं। अतएव सिद्ध हुआ कि कर्मों की गति पर ठीक विचार कर दया धर्म में अत्यन्त दृढ़ता रखनी चाहिए और श्री अरिहंत. सिद्ध. साधु और केवली के प्रतिपादन किये हुए धर्म का शरण ग्रहण करके आत्म विकाश करना चाहिए।

नवमां पाठ—

शीतला (माता) विषय।

प्रिय पाठकवृन्द! जिस प्रकार अन्य रोग शरीर में उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार यह रोग भी शरीरादिक की उष्णता के प्रकोप से निकल आता है इस रोग के शान्ती की [illegible]

[illegible]

घटना घड़ी गई हो।

फिर इस रोग के कई भेद हैं उन के नाम भी शीतला माता के नाम से ही प्रगट किये हुए हैं जैसे कि-यह छोटी माता है, यह पहाड़ी माता है, अमुक बड़ी माता है इत्यादि।

इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि—यमलोक पात के ज्ञान से कोई भी रोग बाहिर नहीं है परन्तु यह कोई अनादि लोक नियम नहीं है कि यह रोग अवश्य ही देवीप्रकोप से उत्पन्न होता है। पांच माता के गर्भ से जो शरीर में गर्मी आई होती है वह समय पाकर यदि और किसी प्रकार से उपशांत न हो सकी तो वह इस प्रकार से शरीर से निकलती है किन्तु निकलते समय उसे शोर करना यह बड़ा हानिकारक होता है इसी वास्ते विशेष औषधी का सेवन इस में नहीं किया जाता ताकि भीतर रुकी हुई गर्मी कोई अन्य हानि उत्पन्न न कर देवे।

अनुमान से यह ठीक जपता है कि—औषधी न [illegible] प्रकार मान लिया गया हो क्योंकि इस [illegible] अच्छा है यही [illegible] शरीर होता है [illegible] सम्मति—यह [illegible] पर्याप्त—यह है कि

यावन्मात्र शरीर में रुधिर है वह सर्व माता का ही अंश जानना चाहिए बालक का शरीर अति सुकोमल होता है जिस से कि—वह उस गरमी को उपशांत नहीं कर सकता अतः वह रुधिर उष्णता का तत्त्व अधिक हो जाने से उछाल खाकर इस आकृति में शरीर से बाहिर आने लगता है, जिस का निकल आना ही अच्छा माना गया है।

यदि केवल देवी प्रकोप ही माना जावे तब जो अनन्य भक्त चिरकाल से देवी की उपासना करते चले आ रहे हैं उन के घर में इस रोग की सर्वथा शांति रहनी चाहिए परन्तु यह भी देखने में कभी नहीं आया।

आजकल जो टीका लगाने की प्रथा हो गई है उस से भी सर्वथा निश्चय पूर्वक नहीं कहा जासकता कि—अब इस पर बिल्कुल शीतला आने का भय नहीं होगा क्योंकि—जिन्होंने अपने जन्म में कई बार टीका के लगाने का प्रतिकार किया है उनके शरीर में भी कभी कभी शीतला आने का आक्रमण निकल ही जाता है तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार [illegible]

[illegible]

आर्य प्रतिकार हो सके उस के द्वारा ही समय व्यतीत करना चाहिए।

क्योंकि —यह रोग माता के रज मे उत्पन्न हुए रुधिर की गरमी के कारण मे ही उत्पन्न होता है इस लिये जब तक बालक दूध के आश्रित होकर अपने जीवन की वृद्धि करने लगता है तब तक माता को अपने आहार और विहार में सावधानी के रखने की अत्यन्त आवश्यकता है कारण कि—माता के दूध में जिस प्रकार के पदार्थों का मिश्रण होगा उसी प्रकार के पदार्थों का बालक के शरीर में संक्रमण हो जायगा।

अतएव माता का जब आहार और विहार सावधानता पूर्वक होगा तब बालक पर भी रोगों का आक्रमण पहिले तो होगा ही नहीं और यदि होगा तो अत्यन्त निर्बल दशा में होगा।

यदि माता के आहार और विहार में सावधानता नहीं रहने पाती तो बालक का शरीर भी सर्वथा निरोग दशा के आनंद से वंचित ही रहता है वह बेचारा बड़ी दीन दशा के साथ अपने जीवन की वृद्धि दशा में पदार्पण करने लगता है।

केवल माता के पूजन मे ही रोग की शान्ति मान बैठना यह बात योग्यता के लक्षणों से बाहिर ही की मानी [illegible]।

क्योंकि यदि ऋतुओं के अनुसार पथ्य और अप-
थ्य आहार पर विचार न किया जायगा तब शारीरिक
दशा भी स्वच्छता के साथ रहने के लिये असमर्थ हो
जायगी जैन सम्प्रदाय नामक पुस्तक में लिखा है कि—
देखो वसंत ऋतु में ठंडा खाना बहुत ही हानि करता है
परंतु शीलसातम (शीतला सप्तमी) को सब ही
लोग ठंडा खाते हैं गुड़ भी इस ऋतु में महा हानिकारक
है तो भी शील सातम के दिन खाने के लिये एक दिन
पहिले ही से गुलराब गुलपपड़ी और तेल पपड़ी मिस्सिये
रोटिकादि पदार्थ बनाकर अवश्य ही इस ऋतु में खाते
हैं यह वास्तव में तो अविद्या देवी का प्रसाद है परंतु शीतला
देवी के नाम का बहाना है । हे कुलवंती गृहलक्ष्मियो !
जरा विचार तो करो कि—दया धर्म से विरुद्ध और शरीर
को हानि पहुंचाने वाले अर्थात् इस भव और परभव को
बिगाड़ने वाले इस प्रकार के खान पान से क्या लाभ है ?
जिन शीतला देवी को पूजते २ तुम्हारी पीढ़ियां तक
गुजर गईं परंतु आज तक भी शीतला देवी ने तुम पर कृपा
नहीं की अर्थात् आज तक [illegible] शीतला देवी
के प्रकोप से [illegible]
और [illegible]
[illegible]

[illegible]

ढंग है इस लिये सुज्ञ पुरुषों को उक्त हानिकारक बातों
पर अवश्य ध्यान देकर उनका सुधार करना चाहिये।

इस लेख से यही सिद्ध होता है कि—आर्य प्रति-
कारों को मानते हुए केवल शीतला माता के ही भ्रम
में न पड़ना चाहिए।

अतएव इन कथाओं के करने से आत्म विकाश नहीं हो सकता इस लिये शास्त्रों के श्रवण करने का अभ्यास अवश्यमेव करना चाहिये क्योंकि जब शास्त्रों के सुनने का ठीक अभ्यास पड़ जायगा तब पदार्थों का ठीक २ ज्ञान हो जाएगा जैसे कि उन्माद के रोग में प्रायः बहुत से लोगों को यक्षाधिष्ठित (भूत प्रवेश) का प्रायः भ्रम पड़ जाता है इस में कोई भी सन्देह नहीं है कि यह रोग दोनों कारणों से उत्पन्न हो जाता है जैसेकि एक तो मोहनीय कर्म के उदय से दूसरे देव कारण से परन्तु मोहनीय कर्म के उदय से विशेष उत्पन्न होता रहता है देव प्रयोग में उसकी अपेक्षा कथंचित् होता है अपितु अज्ञानता के कारण लोगों ने प्रायः इस रोग को देव कारण ही मुख्य माना हुआ है इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि देव कारण से उक्त रोग हो सकता है किन्तु वर्तमान काल में देवों के नाम पर पाषण्ड भी अतीव उन्नत दशा को प्राप्त हो गया है इस विषय को जानने के लिये जैन सम्प्रदाय पुस्तक में उक्त विषय को उद्धृत करते हैं जैसे कि—

उन्माद अर्थात हिष्टीरिया (Hysteria)

रोग का वर्णन।

लक्षण यद्यपि इस रोग के लक्षण विविध प्रकार के अनेक तरह के होते हैं अर्थात् किसी बहुत थोड़े

रोग होंगे कि जिनके चिन्ह इस हिष्टीरिया रोग में न होते हों तथापि इसका मुख्य चिन्ह खिंचतान है । यह खिंचतान निद्रावस्था (नींद की हालत) और एकाएकी (अकेले) होने के समय में नहीं होती किन्तु जब रोगी के पास दूसरे लोग होते हैं तब ही होती है तथा एकाएक (अचानक) न हो कर धीरे २ होती हुई मालूम पड़ती है रोगी पहिले हंसता है बकता है पीछे रुदन करता है और उस समय उसके गोला भी ऊपर को चढ़ जाता है खिंचतान के समय यद्यपि असावधानता मालूम होती है परन्तु वह प्रायः जल्द से मिट जाती है कभी २ खिंचतान थोड़ी और कभी २ अधिक होती है रोगी अपने हाथ पैरों को फेंकता है तथा पछाड़े मारता है रोगी के दांत बंध जाते हैं परन्तु प्रायः जीभ नहीं कटती और न मुख से फेन गिरता है रोगी का दम घुटता है वह अपने बालों को नोचता है कपड़ों को फाड़ता है तथा लड़ना झगड़ना करता है [illegible]

[illegible]

प्रगट करता है किसी समय अति उदास हो जाता है कभी कभी अति आनन्द दशा में से भी एकदम उदासी को पहुंच जाता है अर्थात् हंसते २ रोने लगता है अन्य को मारता है तथा लड़ाई करने लगता है इसी प्रकार कभी २ उदासी की दशा में से भी एकदम आनन्द को प्राप्त हो जाता है अर्थात् रोते २ हंसने लगता है रोगी का चित्त इस बात का उत्सुक (चाह वाला) रहता है कि लोग मेरी तरफ ध्यान दें वा दया को प्रकट करें तथा जब ऐसा किया जाता है तब वह अपने पागलपन को और भी अधिक प्रगट करने लगता है।

इस रोग में स्पर्श सम्बन्धी भी कई एक चिन्ह प्रगट होते हैं जैसे मस्तक छोटा और छाती आदि स्थानों में चमकें चलते हैं अथवा शून होता है इस समय रोगी का स्पर्श का ज्ञान बढ़ जाता है अर्थात् थोड़ा सा भी स्पर्श होने पर रोगी को अधिक मालूम होता है और वह स्पर्श उसका इतना असह्य (न सहने के योग्य) मालूम [illegible] रोगी का हाथ भी नहीं [illegible] लक्षण (ध्यान) को [illegible] मालूम होता है। [illegible] उसका कुछ भी नहीं [illegible] मानसिक [illegible] विकार होता है

नाक, कान, आंख और जीभ इन इन्द्रियों में कई प्रकार के विकार मालूम होते हैं अर्थात् कानों में घोंघाट (घों २ की आवाज़) होता है आंखों में विचित्र दर्शन प्रतीत (मालूम) होते हैं जीभ में विचित्र स्वाद तथा नाक में विचित्र गन्ध प्रतीत होते हैं पेट में अर्थात् पेड़ू में से गोला ऊपर को चढ़ता है तथा वह छाती और गले में जाकर ठहरता है जिससे ऐसा प्रतीत होता है-कि-रोगी को अधिक व्याकुलता हो रही है तथा वह उस (गोले) को निकलवाने के लिये प्रयत्न कराना चाहता है कभी २ स्पर्श का ज्ञान बढ़ने के बदले (इवज़ में) उस (स्पर्श) का ज्ञान न्यून (कम) हो जाता है अथवा केवल शून्यता (शरीर की सुन्नता) सी प्रतीत होने लगती है अर्थात् शरीर के किसी भाग में स्पर्श का ज्ञान ही नहीं होता है।

इस रोग में गति सम्बन्धी भी अनेक विकार होते हैं जैसे-कभी २ गति का विनाश हो जाता है अकेली दांती लग जाती है एक अथवा दोनों हाथ पैर खिचते हैं खिचने के समय कभी २ स्नायु रह जाते हैं और अर्धांग (आधे अंग का रह जाना) अथवा ऊरुस्तम्भ (ऊरुओं का रुकना अर्थात् बंध जाना) हो जाते हैं एक वा दोनों हाथ पैर रह जाते हैं अथवा तमाम अंग ही रह जाता है और रोगी को शय्या चारपाई का आश्रय लेना पड़ता है कभी आवाज़ बैठ जाती है और रोगी से बिलकुल ही नहीं बोला जाता

इस रोग में कभी २ स्त्री का पेट बड़ा हो जाता है और उसको गर्भ का भ्रम होने लगता है परंतु पेट तथा योनि के द्वारा गर्भ के न होने का ठीक निश्चय करने से उस का भ्रम दूर हो जाता है गर्भ के न रहने का निश्चय क्लोरोफार्म के सुंघाने से अथवा बिजुली के लगाने से पेट के शीघ्र बैठ जाने के द्वारा हो सकता है।

इस रोग से युक्त स्त्रियों में प्रायः अजीर्ण वमन (उलटी) अम्लपित्त डकार दस्त की कब्जी चूक गोला खांसी दम अधिक आर्तव का होना न होना पीड़ा से युक्त आर्तव का होना और मूत्र का न्यूनाधिक होना यह लक्षण पाये जाते हैं इन के पेशाब में गर्मी आदि विचित्र प्रकार के चिह्न भी होते हैं।

रोगी के यथार्थ वर्णन से तथा इस रोग के चिह्नों के समुदाय (समूह) का ठीक मिलान करने से यद्यपि इस रोग का ठीक २ निश्चय हो सकता है परन्तु तथापि कभी यह अवश्य (जरूर) सन्देह (शक) होता है कि-रोग हिस्टीरिया के सदृश (समान) है अथवा वास्तविक है अर्थात् कभी २ रोग की परीक्षा (जांच) का करना अति कठिन (बहुत मुश्किल) हो जाता है परन्तु जो बुद्धिमान और अनुभवी वैद्य हैं वे इस रोग की खेंचतान को वायु जन्य [illegible] के द्वारा ठीक २ पहिचान लेते हैं।

कारण इस रोग का वास्तविक कारण कोई भी नहीं

इस रोग में कभी २ स्त्री का पेट बड़ा हो जाता है और उसको गर्भ का भ्रम होने लगता है परंतु पेट तथा योनि के द्वारा गर्भ के न होने का ठीक निश्चय करने से उस का भ्रम दूर हो जाता है गर्भ के न रहने का निश्चय औरों कामों के सुंघाने से अथवा बिजुली के लगाने से पेट के शीघ्र बैठ जाने के द्वारा हो सकता है।

इस रोग में कुछ स्त्रियों में प्रायः अजीर्ण वमन (उलटी) अम्लपित्त डकार दम की कब्जी [illegible] अधिक थूक का होना न होना पीड़ा में कुछ अन्तर का होना और मूत्र का न्यूनाधिक होना यह लक्षण पाये जाते हैं इन के सिवाय में गर्मी आदि विचित्र प्रकार के चिह्न भी होते हैं।

गर्भी के यथार्थ वर्णन से तथा इस रोग के चिह्नों के यथार्थ समझ का ठीक विज्ञान करने से यद्यपि इन [illegible] है परन्तु तथापि कभी [illegible] करता है कि इस [illegible] अथवा शारीरिक है [illegible] का करना और [illegible] जा पुंदिकार [illegible] अभ्यास को यह [illegible] जाता है। [illegible] काम भी अति

इस रोग में कभी २ स्त्री का पेट बड़ा हो जाता है और उसको गर्भ का भ्रम होने लगता है परंतु पेट तथा योनि के द्वारा गर्भ के न होने का ठीक निश्चय करने से उस का भ्रम दूर हो जाता है गर्भ के न रहने का निश्चय क्लोरोफार्म के सुंघाने से अथवा बिजुली के लगाने से पेट के शीघ्र बैठ जाने के द्वारा हो सकता है।

इस रोग से युक्त स्त्रियों में प्रायः अजीर्ण वमन (उलटी) अम्लपित्त डकार दस्त की कब्जी चूंक गोला खांसी दम, अधिक आर्तव का होना न होना पीड़ा से युक्त आर्तव का होना और मूत्र का न्यूनाधिक होना यह लक्षण पाये जाते हैं इन के पेशाब में गर्मी आदि विचित्र प्रकार के भी होते हैं।

रोगी के यथार्थ वर्णन से तथा इस रोग के चिह्नों के समुदाय (समूह) का ठीक मिलान करने से यद्यपि इस रोग का ठीक २ निश्चय हो सकता है परन्तु तथापि कभी२ यह अवश्य (जरूर) सन्देह (शक) होता है कि-रोग हिस्टीरिया के सदृश (समान) है अथवा वास्तविक है अर्थात् कभी २ रोग की परीक्षा (जांच) का करना अति कठिन (बहुत मुश्किल) हो जाता है परन्तु जो बुद्धिमान और अनुभवी वैद्य हैं व इस रोग की खैंचतान को वायु जन्य आदि रोग से द्वारा ठीक २ पहिचान लेते हैं।

कारण इस रोग का वास्तविक कारण कोई भी नहीं

इस रोग में कभी २ स्त्री का पेट बड़ा हो जाता है और उसको गर्भ का भ्रम होने लगता है परंतु पेट तथा योनि के द्वारा गर्भ के न होने का ठीक निश्चय करने से उस का भ्रम दूर हो जाता है गर्भ के न रहने का निश्चय क्लोरोफार्म के सुंघाने से अथवा बिजुली के लगाने से पेट के शीघ्र बैठ जाने के द्वारा हो सकता है।

इस रोग में युक्त स्त्रियों में प्रायः अजीर्ण वमन अम्लपित्त डकार दस्त की कब्जी थूक गोला अधिक आर्तव का होना न होना पीड़ा से युक्त आर्तव होना और मूत्र का न्यूनाधिक होना यह लक्षण हैं इन के पेशाब में गर्मी आदि विचित्र प्रकार के भी होते हैं।

रोगी के यथार्थ वर्णन से तथा इस रोग के समुदाय (समूह) का ठीक मिलान करने से यद्यपि इस रोग का ठीक २ निश्चय हो सकता है परन्तु तथापि कभी यह अवश्य (ज़रूर) सन्देह (शक) होता है कि—रोग हिस्टीरिया के सदृश (समान) है अथवा वास्तविक है अर्थात् कभी २ रोग की परीक्षा (जांच) का करना अति कठिन [illegible] हो जाता है परन्तु जो बुद्धिमान [illegible] इस रोग की खैंचतान को [illegible] ठीक २ पहिचान लेते हैं।

[illegible] का वास्तविक कारण कोई भी नहीं

इस रोग में कभी २ स्त्री का पेट बड़ा हो जाता है और उसको गर्भ का भ्रम होने लगता है परन्तु पेट तथा योनि के द्वारा गर्भ के न होने का ठीक निश्चय करने से उस का भ्रम दूर हो जाता है गर्भ के न रहने का निश्चय क्लोरोफार्म के सुंघाने से अथवा बिजुली के लगाने से पेट के शीघ्र बैठ जाने के द्वारा हो सकता है।

इस रोग से युक्त स्त्रियों में प्रायः अजीर्ण वमन (उबकी) अम्लपित्त डकार दस्त की कब्जी थूक गेरना खांसी इत्यादि आर्त्तव का होना न होना पीड़ा से युक्त आर्त्तव का होना और मूत्र का न्यूनाधिक होना यह लक्षण पाये जाते हैं इन के सिवाय में गर्मी आदि विविध प्रकार के विकार भी होते हैं।

रोगी के यथार्थ वर्णन से तथा इस रोग के चिन्हों के समुदाय (समूह) का ठीक मिलान करने से यद्यपि इस रोग का ठीक २ निश्चय हो सकता है परन्तु तथापि कभी २ यह अत्यन्त [illegible] सन्देह युक्त होता है कि-रोग [illegible] है अथवा शारीरिक है [illegible] रोग का करना और [illegible] है परन्तु जो चिकित्सक [illegible] बुद्धिमान को यह [illegible] सब है।
[illegible] कार भी वह

होता है तथा इसके हँसना और रोना आदि लक्षणों को जब स्त्रियां प्रकट करती हैं उस समय हमारे भोले श्रीमान् लोग तथा साधारण जन रोग और उसके हेतु को न जान कर भूत आदि की बाधा ही समझ लेते हैं तथा डोरा डंडा यंत्र मंत्र और झाड़ा झपाटा आदि करने कराने में कुछ भी बाकी नहीं रखते हैं ऐसे समय को पाकर ठग लोग भी उनको अपने पंजे में फंसा कर अपना मतलब साधने में कुछ भी बाकी नहीं रखते इस प्रकार यंत्र मंत्र डोरा डांडा और झाड़ा झपाटा आदि करते कराते उनको वर्षों बीत जाते हैं और हज़ारों रुपये खर्च हो जाते हैं परंतु रोगी को कुछ भी लाभ नहीं होता है अर्थात् वह हिष्टीरिया रूपी भूत ज्यों का त्यों ही बना रहता है आख़िरकार परिणाम (नतीजा) यह होता है कि-रोगी के सब कुटुम्बी जन हाथ मलमल कर पछताते हैं और बहुत समय के हो जाने से वह रोग प्रबल रूप धारण कर लेता है और रोगी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

प्रियवाचकवृन्द ! अब तो चेतो और अविद्या की शरण छोड़कर विद्या देवी की उपासना करो अर्थात् भूत प्रेत आदि के भ्रम (वहम) को तथा मावड्यां जी और भैरूं जी आदि के दोष को एवं कामण ट्रमण आदि के वहमों को छोड़ो। देखो ! इन्हीं वहमों ने इस गृहस्थाश्रम का सत्यानाश कर दिया है और करते जाते हैं इस लिये सज्जनों

और बुद्धिमानों को इन वहमों को स्वयं त्याग देना चाहिये तथा प्रति नगर (हर शहर) और प्रति ग्राम (हर गांव) में इन वहमों से बचने का उपदेश भी लोगों को करना चाहिये कि–जिससे ये वहम सर्वत्र ही दूर हो जावें (प्रश्न) आपने भूत प्रेत आदि के विषय में केवल भ्रम (वहम) बतलाया सो क्या आप भी अंग्रेज़ी पढ़ने पढ़ाने वाले लोगों के समान पूर्वाचार्यों के वचनों को मिथ्या ठहराते हैं ? (उत्तर) प्रियबंधुओ ! हम पूर्वाचार्यों के वचन को कभी भी मिथ्या नहीं ठहरा सकते हैं और ना ही उनके वचनों का खंडन कर सकते हैं क्योंकि—उन के वचनों को मानना तथा उसी के अनुसार चलना हम सब लोगों का परम धर्म है जो लोग उन के वचनों को नहीं मानते तथा उन के वचनों का खण्डन करते हैं उन लोगों की यह बड़ी भूल है, क्योंकि वे (पूर्वाचार्य) महात्मा परोपकारी और सत्यवादी थे तथा उनका वचन इस भव और परभव दोनों में हितकारी है इस लिये हमने भी इस ग्रन्थ में उन्हीं महात्माओं के वचनों को अनेक शास्त्रों से लेकर संगृहीत किया है किन्तु जिन लोगों ने उक्त महात्माओं के वचनो को नहीं माना वे अविद्या उपासक समझे गये और उसी के प्रमाद में वे धर्म को अधर्म सत्य को असत्य और असत्य को सत्य, शुद्ध को अशुद्ध और अशुद्ध को शुद्ध जड़ को चेतन और चेतन को जड तथा

अधर्म को धर्म समझने लगे बस उन्हीं लोगों के प्रताप से आज इस पवित्र गृहस्थाश्रम की यह दुर्दशा हो रही है और होती जाती है तथा इस आश्रम की यह दुर्दशा होने से इस के आश्रयीभूत (सहारा लेने वाले) शेष तीन आश्रमों की दुर्दशा होने में आश्चर्य ही क्या है ? क्योंकि जैसा आहार वैसा उद्गार बस हमारे इस पूर्वोक्त वचन पर थोड़ा सा ध्यान दो तो हमारे कथन का आशय तुम्हें अच्छे प्रकार से मालूम हो जावेगा।

प्रश्न—आपने भूत प्रेत आदि का केवल वहम बतलाया है सो क्या भूत प्रेत आदि हैं ही नहीं।

उत्तर—हमारा यह कथन नहीं है कि भूत प्रेत आदि कोई पदार्थ नहीं हैं क्योंकि हम सब ही लोग शास्त्रानुसार स्वर्ग और नरक आदि सब व्यवहारों को मानने वाले हैं अतः हम भूत प्रेत आदि सब कुछ मानते हैं क्योंकि जीव विचार आदि ग्रन्थों में व्यन्तर देवों के आठ भेद कहे हैं पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गन्धर्व इस लिये हम उन सब को यथावत् (ज्यों का त्यों) मानते हैं इस लिये हमारा कथन यह नहीं है। जो गृहस्थ लोग रोग के समय में भूत प्रेत आदि के वहम में फंस जाते हैं सो उनकी यह मूर्खता है क्योंकि-देखो ऊपर लिखे हुए जो पिशाच आदि देव हैं वे प्रत्येक मनुष्य के शरीर में नहीं आते, हां यह दूसरी बात है

कि पूर्व भव (पूर्व जन्म) का कोई वैरानुबन्ध (वैर का सम्बन्ध) हो जाने से ऐसा हो जावे (किसी के शरीर में पिशाचादि प्रवेश करे) परन्तु इस बात की तो परीक्षा सहज में हो सकती है अर्थात् शरीर में पिशाचादि का प्रवेश है वा नहीं इस बात की परीक्षा को तुम सहज में थोड़ी देर में ही कर सकते हो । देखो, जब किसी के शरीर में तुम को भूत प्रेत आदि की सम्भावना हो तो तुम किसी छोटी सी चीज़ को हाथ की मुट्ठी में रख कर उससे पूछो कि हमारी मुट्ठी में क्या चीज़ है ? यदि वह उस चीज़ को ठीक २ बतला दे तो पुनः भी दो तीन बार दूसरी चीजों को लेकर पूंछे जब कई बार ठीक २ बतला दे तथा भविष्यत् वाणी उसकी ठीक निकल पड़े जैसे कि किसी स्थान पर धन भूमि पर रक्खा हुआ वह बतला दे या पर्वतों आदि में ठीक २ बतला दे तो बेशक शरीर में भूत प्रेत आदि का प्रवेश समझना चाहिये ।

यही परीक्षा भैरूं जी तथा मावड्यां जी आदि के भोपों पर (जिन पर भैरूं जी आदि की छाया का आना माना जाता है) भी हो सकती है अर्थात् वे (भोपे) भी यदि वस्तु को ठीक २ बतला देवें तो अलबत्ता उक्त देवों की छाया उन के शरीर में समझनी चाहिये परन्तु यदि मुट्ठी की चीज को न बतला सके तो ऊपर

कहे हुए दोनों को मिथ्या समझना चाहिये।

प्रश्न—हमने आप की बतलाई हुई परीक्षा को तो कभी नहीं किया क्योंकि यह बात आज तक हमको मालूम ही नहीं थी परन्तु हमने भूतनी को निकालते तो अपनी आंखों से (प्रत्यक्ष) देखा है वह आप से कहता हूं। सुनिये—मेरी स्त्री के शरीर में महीने में दो तीन बार भूतनी आया करती थी मैंने बहुत से झाड़ा झपाटा करने वालों से झाड़े झपाटे आदि करवाये तथा उन के कहने के अनुसार बहुत सा द्रव्य भी व्यय किया परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ आखिरकार झाड़ा देने वाला एक उस्ताद मिला उस ने मुझ से कहा कि मैं तुम को आंखों से भूतनी को दिखा दूंगा तथा उसे निकाल दूंगा परन्तु तुम से एक सौ एक रुपया लूंगा मैंने उसकी बात को स्वीकार कर लिया पीछे मंगलवार के दिन शाम को वह मेरे पास आया और मुझ से फुलस्केप कागज का आधा शीट (तख्ता) मंगवाया और उस कागज को मंत्र कर मेरी स्त्री के हाथ में उसे दिया और लोबान की धूप देता रहा पीछे मन्त्र पढ़ कर सात कंकड़ी उसने मारीं और मेरी स्त्री से कहा कि देखो इस में तुम्हें कुछ दीखता है मेरी स्त्री ने लज्जा के कारण जब कुछ नहीं कहा तब मैंने उस कागज को देखा तो उस में साक्षात भूतनी का चेहरा मुझ को दीख पड़ा तब मुझ को विश्वास हो गया और

भूतनी को देखा ही नहीं था (यह नियम की बात है कि पहिले साचात् देखे हुए मूर्तिमान् पदार्थ के चित्र को देख कर भी वह पदार्थ जाना जाता है) बस विना भूतनी के देखे कागज में लिखे हुए चित्र को देखकर भूतनी के चेहरे का निश्चय कर लेना तुम्हारी अज्ञानता नहीं तो और क्या है ?

प्रश्न—हमने माना कि कागज में भूतनी का चेहरा भले ही न हो परन्तु विना लिखे वह चेहरा उस कागज में आगया यह उसकी उस्तादी नहीं तो और क्या है ! जब कि बिना लिखे उसकी विद्या के बल से वह चेहरा कागज में आ गया इस से ठीक निश्चय होता है कि वह विद्या में पूरा उस्ताद था और जब उसकी उस्तादी का निश्चय हो गया तो उसके कथनानुसार कागज में भूतनी के चेहरे का भी विश्वास करना ही पड़ता है।

(उत्तर) उसने जो तुम को कागज में साचात् चेहरा दिखला दिया वह उसकी विद्या का बल नहीं किन्तु केवल उसकी चालाकी थी तुम उस चालाकी को जो विद्या का बल समझते हो यह तुम्हारी बिलकुल अज्ञानता तथा पदार्थ विद्यानभिज्ञता (पदार्थ विद्या को न जानना) है देखो ! विना लिखे कागज में चित्र का दिखला देना यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि पदार्थ विद्या के द्वारा अनेक प्रकार के अद्भुत (विचित्र)

अभावरूप पदार्थ का मन के ऊपर इस प्रकार से असर हो जाता है फिर जो भाव रूप-पदार्थ का आश्रय लेकर कार्य किया जाए उसका क्या ही ठिकाना है।

अर्थात् भवनपति व्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक इस प्रकार चारों जाति के देव गण विद्यमान हैं वे जीवों के शुभाशुभ कर्मों के अनुसार कारणीभूत बन भी जाते हैं परन्तु वर्त्तमान समय में उन के नाम पर बहुत से पाखंड प्रचलित हो रहे हैं अतएव विद्वान् वर्ग को योग्य है कि—वे भ्रम में ही फंसकर दुःखित न रहें अपितु परीक्षा करें।

क्योंकि—परीक्षा द्वारा सत्य और असत्यका निर्णय भली प्रकार से किया जा सकता है तथा सूत्र में है कि-ब्रह्मचर्यादि व्रतों के ठीक न पालन किये जाने पर मन की अत्यन्त निकृष्ट दशा हो जाने पर भी उन्माद की प्राप्ति हो सकती है अतएव जिस आत्मा की उक्त दशाएं होजाएं उस की पूर्वापर सब दशाओं पर बुद्धि पूर्वक विचार करना चाहिए।

साथ ही इस बातका भी विचार रखना चाहिए कि—धर्मात्मा और ब्रह्मचारी जनों को तो देव भी नमस्कार करते हैं तो भला फिर वे धर्मात्माओं को पीड़ित किस प्रकार कर सकते हैं।

यदि पिछले जन्म के वैरानुबंध से किसी देव विशेष

के द्वारा पीड़ा हो भी गई तो वह अहिंसा धर्म के ग्रहण से और ब्रह्मचर्य के धारण करने से दूर हो सकती है अतः धर्म में सदैव काल लिप्त रहना चाहिए जिस से कि—कष्ट उत्पन्न ही न हो सके। जैसे कि—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सयामणो॥
दशवैकालिकसूत्र अध्याय प्रथम गाथा प्रथम।

भावार्थ—सब मंगलों में धर्म मंगल उत्कृष्ट है जो अहिंसा संयम और तप रूप है अर्थात् दया धर्म, संयम धर्म और तप धर्म। यह तीनों धर्म उत्कृष्ट मंगल हैं देवता भी उस आत्मा को नमस्कार करते हैं जिसका कि उक्त धर्मों में सदा मन लगा रहता है।

देव दाणव गंधव्वा जक्ख रक्खस्स किण्णरा।
बंभयारिं नमंसंति दुक्करं जे करंति ते॥ उत्तराध्ययन अ० १६

भावार्थ—देवता दानवदेव गंधर्वदेव यक्ष राक्षस और किन्नर सबही प्रकार के देवता ब्रह्मचारी आत्मा को नमस्कार करते हैं क्योंकि—इस व्रत का पालन करना अत्यन्त दुष्कर है अतः जो उक्त दुष्कर व्रत का पालन करते हैं उन को देवगण भी हर्षपूर्व हो कर नमस्कार करते हैं सो सब कष्टों से बचने के लिये उक्त धर्म और ब्रह्मचर्य व्रत अवश्यमेव धारण करने चाहिएं।

जिस से दोनों लोकों में कल्याण की प्राप्ति हो और आत्मविकाश होने पर मुक्ति के साधन की योग्यता प्रकट होवे।

ग्यारहवां पाठ।

(माता और पुत्री का संवाद).

पुत्री—माता जी! मेरे जन्म का मुख्योद्देश क्या है?

माता—पुत्री! तेरे जन्म का मुख्योद्देश योग्यतापूर्वक गृहलक्ष्मी बनकर सहस्रों महिलाओं में आदर्श बनना है क्योंकि—तेरे आदर्श से लाखों कन्याएं सुमार्ग में चलने वाली होजाएंगी।

पुत्री—माता जी! मुझे योग्यता किस प्रकार प्राप्त करनी चाहिए?

माता—बेटी! योग्यता दो प्रकार से धारण की जाती है एक तो विद्या से दूसरी आचरण से।

पुत्री—माता जी! विद्या से योग्यता किस प्रकार प्राप्त करनी चाहिए?

माता—हे मेरी प्यारी कन्ये! पहिले पहल कन्याओं को योग्य है कि—वह धार्मिक पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षण सीखे तत्पश्चात् वे शिल्पकलाओं में भी अपनी योग्यता

जिस से दोनों लोकों में कल्याण की प्राप्ति हो और आत्मविकाश होने पर मुक्ति के साधन की योग्यता प्रकट होवे।

ग्यारहवां पाठ।

(माता और पुत्री का संवाद)

पुत्री—माता जी ! मेरे जन्म का मुख्योद्देश क्या है ?

माता—पुत्री ! तेरे जन्म का मुख्योद्देश योग्यतापूर्वक गृहलक्ष्मी बनकर सहस्रों महिलाओं में आदर्श बनना है क्योंकि—तेरे आदर्श से लाखों कन्याएं सुमार्ग में चलने वाली होजाएँगी।

पुत्री—माता जी ! मुझे योग्यता किस प्रकार प्राप्त करनी चाहिए ?

माता—बेटी ! योग्यता दो प्रकार से प्राप्त की जाती है एक तो विद्या से दूसरी आचरण से।

पुत्री—माता जी ! विद्या से योग्यता किस प्रकार प्राप्त करनी चाहिए ?

माता—हे मेरी प्यारी कन्ये ! [illegible] कन्याओं को [illegible] है । [illegible] धार्मिक पाठशालाओं में धार्मिक [illegible] व शिल्पशालाओं में भी अपनी योग्यता

का नाश न करना चाहिए। यही पहिला अनुव्रत है।

पुत्री—जब हम रोटी पकाती हैं और पानी भरकर लाती हैं तथा और सारे घर के काम काज करती हैं तो क्या उस समय कोई जीव नहीं मरता होगा ?

माता—पुत्री ! घर के काम काज करते समय सुयोग्य कन्याओं को उचित है कि वे सारे काम काज बिना यत्न न किया करें।

पुत्री—माता जी ! जब चूल्हा चौका व चक्की का काम करना पड़ता है तो उस समय यत्न कैसे किया जाय ?

माता—पुत्री ! चूल्हे या चौके का काम करते समय पहिले सब स्थानों को भली प्रकार देख लेना चाहिये कि कोई जीव तो नहीं बैठा है यदि देखने पर कोई जीव दृष्टिगोचर हो जावे तब उसके प्राण बचा देने चाहियें। इसी प्रकार जब पानी के घड़े आदि का काम पड़ जाय तब भी वह स्थान भली प्रकार देख लेने चाहियें क्योंकि गरमी के कारण शीतल स्थान जानकर कई विष वाले जीव भी उस स्थान पर आ बैठते हैं देखने पर अपना और उन जीवों का भला हो जाता है।

पुत्री—माता जी ! चक्की को किस तरह देखना चाहिये ?

माता—पुत्री ! उस के पुड़ को उठाकर उसे देखना चाहियें कि उस में कोई जीव तो नहीं बैठा हुआ है क्यो-

कि उस समय कीड़ी व सुसरी आदि जीव उस में लगे होते यदि न देखा जाय तो उन के प्राण हरण हो जाते हैं और चून आदि पदार्थ अपवित्र होकर फिर उन जीवों के खाने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

पुत्री—माता जी! क्या हमें पीसना कूटना ईंधन जलाना पकाना सीना परोना पानी आदि भरना तथा खाना पीना कोई भी काम बिना देखे न करना चाहिये?

माता—हे मेरी प्यारी बेटी! जितने काम घर की कन्याओं को करने पड़ते हैं उन सब कामों को बिना देखे न करना चाहिये।

पुत्री—माता जी! क्या दीपमालिका के दिन हमें जुआ भी न खेलना चाहिये?

माता—पुत्री! दीपमालिका तो क्या परन्तु जुआ कभी भी न खेलना चाहिये।

पुत्री—माता जी! इस के खेलने में क्या दोष है?

माता—पुत्री! इस के खेलने में कर्त्तव्यपरायणता का नाश होकर केवल अन्याय ही बढ़ जाता है फिर जितने चोरी आदि के व्यसन हैं वे इस के प्रसंग से घर लग जाते हैं [illegible] जो [illegible] जुआरी को भोगना नहीं पड़ता [illegible]

पुत्री—माता जी! [illegible]
[illegible]

माता—हे प्यारी कन्ये ! यदि किसी ने कुछ जीत भी लिया उस धन का इस प्रकार से प्रकाश होता है जैसे बुझते हुए दीपक का । फिर बुरे कर्मों से मानव की क्या परीक्षा होगी परीक्षा तो पहिले ही हो गई जो अच्छे काम को छोड़कर बुरे काम में लग गया । तथा जीतने का भी निश्चय नहीं है इसकी जीत भी हानि-कारक है पुत्री इसे कदापि न खेलना चाहिये ।

पुत्री—माता जी ! दीपमालिका का पर्व क्यों मनाया जाता है ?

माता—पुत्री ! हमारे श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उस रात्री को मोक्ष में पधारे थे सो उस समय देवों ने आकर उत्सव किया था उसी दिन से श्रीभगवान् की स्मृति के लिए यह पर्व भारतवर्ष में मनाया जाने लगा ।

पुत्री—माता जी ! हमें फिर उस रात्री में क्या करना चाहिये ।

माता—पुत्री ! उस रात्रि में भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् का जाप करना चाहिये । और उन के पवित्र गुणों का अनुकरण करना चाहिये ।

पुत्री—माता जी ! क्या घर के सब काम काज विना सावधानी से न करने चाहिये ।

माता—हे बेटी ! घर के सब काम काज विना सावधानी से कोई भी न करना चाहिये ।

पुत्री—माता जी ! दूसरा अनुव्रत श्रीभगवान् ने कौनसा बतलाया है ?

माता—हे बेटी ! जानकर झूठ न बोलना यह दूसरा अनुव्रत श्रीभगवान् ने बतलाया है।

पुत्री—माता जी ! इसका मैं पूरा अर्थ नहीं समझी।

मा—पुत्री ! श्रीभगवान् ने प्रतिपादन किया है कि–गृहस्थों से सर्वथा तो झूठ का त्याग हो ही नहीं सकता किन्तु जिसके बोलने से धर्म और सांसारिक कार्यों में बड़ा आघात पहुंचता हो पहिले इस प्रकार के झूठ का त्याग कर देना चाहिए जैसे कि–वर कन्या के सम्बन्ध विषय झूठ बोलना गो आदि पशुओं के लिये झूठ बोलना भूमि के लिये झूठ बोलना किसी की वस्तु को रखकर फिर कहदेना कि–मेरे पास तो रक्खी ही नहीं और झूठी साक्षी भरना इत्यादि प्रकार का झूठ न बोलना चाहिए।

पु—माता जी ! किसी को गाली देने से क्या दोष है ?

मा—हे बेटी ! गाली देने से एक तो अपनी आत्मा मलिन होती है दूसरे उसकी आत्मा दुःखित होती है और दुःख देना ही बड़ा पाप शास्त्रों ने माना है इस लिये किसी को भी गाली न देनी चाहिए ?

पु- माताजी ! पिता बड़ा भाई तथा और [illegible] घर के सम्बन्धी हैं उनसे किस प्रकार बोलना चाहिए ?

मा—पुत्री ! जितने घर के सम्बंधी हैं उनमें यथायोग्य विनय से वर्त्तना चाहिए-क्योंकि-जब उन सब सम्बन्धियों का यथायोग्य सत्कार किया जावेगा तब परस्पर प्रेम भाव बढ़ जाएगा जिससे फिर हरएक कार्य की वृद्धि होती रहेगी।

पु—माताजी ! क्या सबको "जी" के साथ ही बुलाना चाहिये ?

मा—पुत्री ! मैं पहिले ही कहचुकी हूं कि यथायोग्य सब के साथ विनय से वर्त्तना चाहिए। और 'जी' शब्द ही कहना चाहिए।

पु—माताजी ! जब पहिले पहिल कोई मिले तब क्या करना चाहिए ?

मा—पुत्री ! विनय पूर्वक 'जयजिनेन्द्रदेव' कहना चाहिए।

पु—माताजी ! तीसरा अनुव्रत कौनसा है।

मा—पुत्री ! जानकर चोरी न करना।

पु—माताजी ! क्या बिना कहे किसी की वस्तु को न उठाना चाहिए।

मा—पुत्री ! बिना कहे किसी की वस्तु को बिलकुल न उठाना चाहिए क्योंकि-जो बिना आज्ञा दूसरों की वस्तु उठाते हैं वे दुःखों में पीड़ित किये जाते हैं उन्हीं के लिये कारागृह बने हुए हैं।

पुरुषों का संग न करना मदिरा पान और मांसादि पदार्थों का सेवन न करना अपने शरीर का दूसरों के साथ स्पर्श होने से बचाव रखना अतिसूक्ष्म (बारीक) वस्त्र पहिनकर घर से बाहिर न निकलना क्योंकि-जिन वस्त्रों के पहिनने से अंगोपांग दीखते हों वे वस्त्र ब्रह्मचर्य की रक्षा करने में बाधा उत्पन्न करते हैं सारांश यही है कि जिस प्रकार इस महाव्रत की रक्षा होसके उसी प्रकार आहार और विहार में वर्त्तना चाहिए।

पु—माताजी! पांचवां अनुव्रत कौनसा है?

मा—पुत्री! पांचवां अनुव्रत स्थूल परिग्रह विरमणरूप है।

पु—माताजी! मैं इसका अर्थ नहीं समझी।

मा—हे बेटी! धन और धान्य से संतोष धारण करना अर्थात् यावन्मात्र अपने पास पदार्थ हैं उन्हीं पर संतोष धारण करना किन्तु जो अत्यन्त इच्छा है उस का निरोध करना यही इस व्रत का मुख्य प्रयोजन है।

पु—माताजी! क्या रात्रि को खाना अच्छा नहीं है?

मा—पुत्री! रात्रि का खाना बिलकुल अच्छा नहीं है क्योंकि—रात्रि के खाने में खानपान से सर्वथा यत्न नहीं होसकता अतः रात्रि को बिलकुल नहीं खाना चाहिए तथा जहांतक बन पड़े बचाव रखना चाहिए।

पु—माताजी! सासु और सुसर के साथ किस प्रकार से वर्तना चाहिए?

आप को विश्वास दिलाती हूं कि-मैं इस प्रकार नहीं करूंगी जो आपने मुझे बंद किया था कि अमुक स्त्री से वार्त्तालाप न करना क्योंकि–उसकी संगति शुभ नहीं है यद्यपि मैं इस कार्य में चूकी तो नहीं थी परन्तु तथापि अचानक उसीने मुझे आकर ऐसे कहा था जिससे कि-मैं अपने मुख्योद्देश से स्खलित होगई अब मैं आगे के लिये आपकी आज्ञा सावधानी से पालन किया करूंगी। तथा जिसकी संगति से कुछ भी लाभ न हो उसकी संगति मैं कदापि न करूंगी. इस प्रकार के मधुर वाक्यों से अपनी सासु को प्रसन्न करना चाहिए। फिर जिस प्रकार घर में संप बनारहे उसी प्रकार वर्त्तना चाहिए।

पु०—माता जी! सासु को वहू के साथ किस प्रकार वर्त्तना चाहिए?

मा०—पुत्री! जिस प्रकार सुयोग्य माताएँ अपनी प्यारी कन्याओं के साथ वर्त्ताव रखती हैं उसी प्रकार सासु को वहू के साथ वर्त्तना चाहिए, यदि कारणवशात् वहू से कुछ भूल भी हो जाए तब प्रेमपूर्वक और मीठे मधुर वाक्यों से ही उसे शिक्षा देनी चाहिए किन्तु थोड़ी थोड़ी बात के लिये उसे न धमकाना चाहिए जैसे कि—तूं ऐसे नीच घर से आई है तब ही तो तू ऐसे २ कौतुक करती है, मैं अपने पुत्र को और किसी स्थानपर विवाह दूंगी—परन्तु तेरा मुंह न देखूंगी या—तू अपने पितृगृह

में ही चली जा। यहां फिर मत आना—देखूँगी तुझे कौन लेने जाएगा तथा तेरी रोटी पृथक् (जुदी) करा दूँगी फिर उसकी अपने पति के पास या पुत्र के पास चुग़ली खाना और सदैव काल अपनी बहू के छिद्र ही देखते रहना यह अति निकृष्ट कार्य है, अतः सासु को इस प्रकार से अपनी बहू के साथ बिल्कुल न वर्त्तना चाहिए किन्तु सभ्यता के साथ वर्त्ताव रखती हुई यदि बहू में कभी भूल दृष्टिगोचर हो जाए तो उसे प्रेम भरे मीठे वाक्यों से शिक्षित करना चाहिए।

पु०—माता जी ! यदि सासु का स्वभाव अति कठोर होवे तो किस प्रकार वर्त्तना चाहिए ?

मा०—मेरी प्यारी बेटी—जहां तक बन सके उस के स्वभाव को आज्ञापालन द्वारा शांत करना चाहिए फिर परोक्ष में जो सासु के गुण हों उन्हीं का वर्णन कर देना उचित है क्योंकि—तू नहीं जानती कि—बहुत स्त्रियां ऐसी होती हैं जो पर घर में आग सुलगा कर आप अलग हो जाती हैं फिर उस घर में क्लेश उत्पन्न हो जाता है जिस से फिर वही स्त्रियें सासु और बहू दोनों की निंदा करने लग जाती हैं जिस से उन घर का गौरव जाता रहता है ऐसे कारणों से उस घर में लोग फिर सम्बन्ध करने से हिचकने लगते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि इस घर में तो पहिले ही सासु बहू का महाभारत मचा हुआ है क्या

हमने अपनी प्यारी कन्या को भाठ में गेरना है अतः हे पुत्री ! सुयोग्य कन्याओं और सुयोग्य सासुओं को यही श्रेयस्कर है कि परस्पर प्रेम वर्त्ताव से क्लेश को कदापि उत्पन्न न होने दें ।

पुत्री—माता जी ! क्या अपनी सहेलियों से अपने घर की बातें न कहनी चाहियें ?

माता—पुत्री ! अपने घर की बातें किसी से न कहनी चाहियें क्योंकि बहुत सी बातें ऐसी हुआ करती हैं जिनके प्रगट करने से अपने घर का गौरव घट जाता है इतना ही नहीं किन्तु साथ २ अपनी प्रतीति भी नहीं रहती फिर अपने घर वालों का उस कन्या या बहू पर किसी प्रकार का विश्वास नहीं रहता वरंच उस को मूर्खनी या क्षुद्र बुद्धि वाली इस प्रकार के शब्दों से पुकारा जाता है आयु भर उस घर में फिर निष्प्रेम जीवन व्यतीत करना पड़ता है इससे स्वयं सिद्ध है कि जब प्रेम उठ गया तब उसके दुःख निवृत्त करने के उपाय भी नहीं सोचे जाते अतः उस बहू का सारा ही पवित्र जीवन अनेक प्रकार के संकटों के सहने वाला बन जाता है अतः सिद्ध हुआ कि अपने घर की बातें जिनमें हानि पहुँचने की सम्भावना की जा सके उसे प्रकाशन करना उचित नहीं है ।

पु—माताजी ! यदि सहेलियों से बातें न कीजाएं तो फिर बात किस के साथ करनी चाहिए ?

फिर उन बच्चों का स्वभाव भी उसी प्रकार का होता जाता है।

इस लिये बच्चों से बड़ी योग्यता के साथ बर्त्ताव होना चाहिये।

पुत्री—माता जी ! यदि बच्चे किसी बात को न मानें तो क्या उनके साथ कटुक बर्त्ताव न करना चाहिये ?

माता—बेटी ! जिस प्रकार की शिक्षाओं से बच्चों को शिक्षित किया जायगा बच्चे प्रायः उसी प्रकार के स्वभाव के अभ्यासी हो जाते हैं यदि उन बच्चों को गालियों से ही शिक्षित किया जायगा तो उनके मुंह पर भी गालियां चढ़ जायेंगी इस लिये जो मातायें अपने बच्चों को गालियों से शिक्षित करने की इच्छा रखती हैं वे मरुभूमि में कल्प वृक्ष के लगाने वाले पुरुष के समान काम करना चाहती हैं सो असभ्य वचनों से पुत्र और पुत्री को कदापि आमन्त्रित न करना चाहिये वरंच जो माता पिता इस प्रकार अपनी सन्तान के साथ बर्त्ताव करते हैं वे उनके पवित्र जीवन पर कुल्हाड़े के सदृश आघात पहुंचाते हैं।

बच्चों के साथ सदाचार और लज्जा से भरा हुआ सद्बर्त्ताव करना चाहिये जिस से उनको सदाचार की ओर झुकने का अभ्यास पड़ जाय।
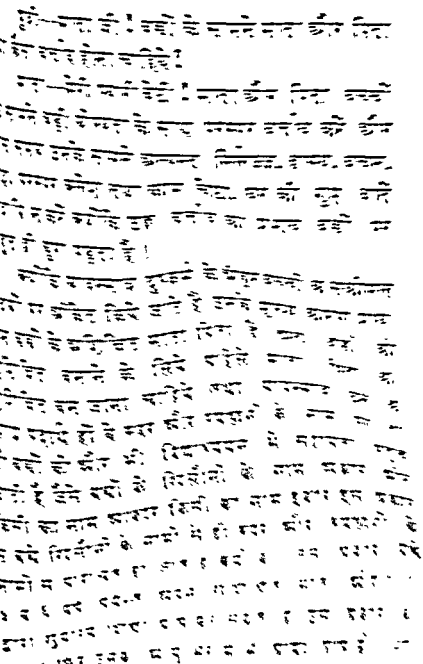
के नियमों द्वारा अपना कल्याण कर सकती हैं अपितु गृहस्थाश्रम में रहने वाले व्यक्तियों को गृहस्थाश्रम के नियम पालने ऐसे ही कठिन होते हैं जैसे कि कोई विद्यार्थी विश्वविद्यालय की परीक्षा के लिये अपनी दुकान में तय्यारी करने की इच्छा करे।

क्योंकि वह विद्यार्थी इस बात को मान रहा है कि दुकान का काम भी करता जाऊंगा और मैं पुस्तकों को भी भली प्रकार कण्ठस्थ कर लूंगा। जैसे फिर उस विद्यार्थी को दोनों क्रियायें करनी अर्थात् कठिन हो जाती हैं ठीक उसी प्रकार गृहस्थाश्रममें रहते हुए गृहस्थों के लिये नियम को निर्दोषता पूर्वक पालन करना भी अत्यन्त शूरवीरता का ही कर्तव्य है क्योंकि आस्तिक लोगों का मुख्योद्देश मोक्षगमन करना ही है सो मोक्ष प्राप्ति के मुनि वृत्ति और गृहस्थ धर्म यह दोनों ही मार्ग हैं सो जो आत्माएं मुनि आश्रम में प्रविष्ट नहीं हो सकतीं उनके लिये गृहस्थाश्रम के नियम आवश्यक बतलाये गये हैं। सो उन्हीं नियमों में स्वदारा सन्तोष नामक नियम भी है।

जो आत्मायें सर्वथा ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण नहीं कर सकतीं वे व्यभिचार कर्म के रोकने के लिये और मोहनीय कर्म के उपशान्त करने के लिये आय विवाहों के द्वारा गृहस्थ धर्म के नियम का पालन कर सकती है।

विवाह का मुख्योद्देश इन्द्रिय धर्म की तृप्ति के लिये

हीं नहीं किन्तु योग्यता पूर्वक गृहस्थाश्रम के नियमों को चलाते हुए शेष तीनों आश्रमों की यथोचित सेवा द्वारा अपना आत्म कल्याण करना भी है।

अतएव जब आर्य विवाह द्वारा स्त्री और पुरुष का पाणिग्रहण कराया जाता है तब जनता में यह बात भली प्रकार से प्रसिद्ध हो जाती है कि अमुक बालक का अमुक कन्या के साथ विवाह संस्कार हो गया है।

जिस समय उन दोनों का विवाह संस्कार हो जाता है उसी दिन से उन की पति और पत्नी संज्ञा हो जाती है वह कन्या अपने कन्या शब्द के स्थान पर पत्नी या वहू के शब्द से कही जाती है इसी प्रकार वर का नाम भी पति, स्वामी, प्राणेश्वर, इत्यादि से पुकारा जाता है।

किन्तु जब बालक और बालिकायें विवाह के मुख्यो-देश को समझते हों तब ही वे दोनों परस्पर सुख या दुःख में सहायक हो सकते हैं और विवाह के समय की करी हुई प्रतिज्ञाओं का पालन भी कर सकते हैं परन्च यदि उन को विवाह के उद्देश्य का ही बोध नहीं है तो भला फिर वे प्रतिज्ञाओं का पालन किस प्रकार करेंगे अतः प्राचीन समय में प्रायः योग्यता पूर्वक विवाह होते थे इसी कारण वे [illegible] गृहस्थाश्रम में [illegible] साधक बन जाती थी [illegible] अनेक सुधारक हो [illegible] गृहस्थाश्रम में रहते हुए गृहस्थ धर्म [illegible]

पराकाष्ठा धारण की थी उसी कारण वे एक जन्म लेकर मोक्षाधिकारी हो गए ।

विवाह संस्कार का मुख्योद्देश केवल विषयवासना ही पूरा करना नहीं हैं अपितु मित्रता पूर्वक सुख व दुःख में परस्पर सहायक बनना और धर्म कृत्यों में एक मति होना यह भी एक परम कर्त्तव्य है ।

अतएव पत्नी का कर्त्तव्य है कि वह अपने प्राण प्यारे पति को ईश्वर के समान समझती हुई उसकी आज्ञा का पालन करे इतना ही नहीं किन्तु जब पति का घर में आना होवे तब उसको सत्कार पूर्वक आसन प्रदान किये जाने पर फिर प्रेम पूर्वक उस के दुःख वा सुख में सहायक बने।

क्योंकि यदि विचारकर देखाजाय तो उस पतिव्रता स्त्रीका सर्वस्व पति ही है । पति की सुदृष्टि बिना संसार पच में वह बेचारी मन्दभागिनी वा केवल दुःख भोगने वाली बनजाती है ।

अतएव पतिपर निर्मल भावों से प्रेम रखना और प्रसन्न होकर उससे वार्त्तालाप करना पति के सामने कभी भी क्रोध के आवेश में आकर वार्त्तालाप न करना तथा यदि पति किसी कारण क्रुद्ध भी होजाए तब उसको प्रेमयुक्त वाक्यों से शीतल करना यदि अपना अपराध सिद्ध होजाए तो नम्रता पूर्वक उससे क्षमा की याचना करना तथा घर के सब काम सावधानी से जो कियेजाएं

हैं उनको सदैव देखते रहना । और उन कामों की सफलता अपनी अहंकारवृत्ति को छोड़कर पति के सन्मुख निवेदन करना यदि पति किसी कारण से कठिन वाक्यों का ही प्रयोग करने लग जावे तब अपने मनमें धीरज रखकर नम्र वाक्यों से उसे शांत करना जैसकि—हे स्वामिन् ! मुझ दासीपर अब आप क्षमा करें मैं आप को दृढ़ता पूर्वक विश्वास दिलाती हूं कि—आगे को आपकी इच्छा के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं होगा । इत्यादि वाक्यों से जब वह शांत होजावें तब जो उसके मन में किसी प्रकार की चिंता हो उसके दूर करने का उपाय सोचना यही पतिव्रता स्त्री के लक्षण हैं।

क्योंकि—पतिव्रता स्त्री भलीप्रकार से जानती है कि—मेरा जो कुछ धन या अभूषण है वह सब पति ही है यदि इनकी सुदृष्टि मुझपर न रही तो मेरा जन्म ही निरर्थक हो जाएगा अतः पतिदेव के अपराध से सब देव आराधन किये जासकते हैं यदि इनकी आत्मा मुझ से दुःखित रही तो भला फिर इनको या मुझको शांति का स्थान कौनसा मिलेगा इस प्रकार के सद् विचारों से अपने प्राणप्यारे पति का जो स्त्रियें प्रेमपूर्वक सेवा करती हैं वही पतिव्रता धर्म के पालन करनेवाली कहीजाती हैं ।

किन्तु जिनका स्वभाव हरदम पति के साथ युः

करना ही होगया है वे न तो आप गृहस्थावास में सुख का अनुभव करसकती हैं और न पति को सुखी रहने देती हैं।

इतना ही नहीं किन्तु पति के अवगुण वे सदा लोगों के पास प्रगट करती फिरती हैं इस प्रकार की स्त्रियें पतिव्रता धर्म के पालन करने में अपनी अयोग्यता सिद्ध करती हैं किन्तु पतिव्रता स्त्रियें पति के साथ सहानुभूति रखती हुई यदि किसी आवश्यकीय पदार्थ की याचना भी करनी हो तो वह अपने घरकी स्थिति को देखकर ही याचना करने का साहस करती हैं। क्योंकि—वे जानती हैं कि—जब हमारे घर की स्थिति इस प्रकार की होरही है जब मैं इस समय किसी पदार्थ के लिये विशेष आग्रह करूंगी तो इन की आत्मा जो कतिपय कारणों से पहिले ही व्यथित होरही है वह मेरे इस आग्रह से और भी दुःखित होजाएगी।

सो इनको दुःख में दुःख देना यह मेरा धर्म नहीं है अतः पतिव्रता स्त्रियें बिना समय के देखे पति से किसी आवश्यकीय पदार्थ की याचना में भी साहस नहीं कर सकतीं किन्तु जिन्हों ने केवल इन्द्रिय धर्म ही मुख्य माना हुआ है वे पति के दुःख में सहायक तो क्या परन्तु दुःख में विशेष दुःख उत्पादन करने के लिये एक कारणीभूत बनजाती है जैसे ज्वर में दाह का लगजाना।

क्योंकि—प्रथम तो उसका ही महादुःख भोगना
पड़ता है और उस में हार का भी कारण जो उपस्थित
हुआ तो फिर दुःख का क्या ठिकाना है इसी प्रकार एक
तो पति प्रथम ही व्यापार सम्बन्धी कारोबार से दुःखित
होता है दूसरे घरवाली ने नाक में दम कर रखता है
तो फिर उसके दुःख का क्या ठिकाना है अतएव पति-
व्रता स्त्रियें उक्त क्रियाएं कदापि नहीं करतीं किन्तु वे तो
चाहे पति कैसा ही क्यों न हो उनकी सेवा में ही अपना
कल्याण समझती हैं।

पति चाहे लूला लंगड़ा या नाना प्रकार के रोगों
से घिराहुआ तथा निर्धन आदि दोषों से युक्त या मूर्ख
इत्यादि अवगुण सहित भी हो किन्तु पतिव्रता स्त्रियें अपने
शुद्ध अन्तःकरण से और सचे भावों से अपने प्राणप्यारे
पति की सेवा में ही अपना कल्याण समझती हैं भला
विचारने की बात है कि—जब वे स्त्रियें इस प्रकार अपने
पति की सेवा करती हैं तो फिर वे पति को प्रिय क्यों न
होंगी? अवश्यमेव होंगी। तथा धर्म के योग्य क्यों न
होंगी अवश्यमेव होंगी। एवं वे दोनों लोक में यश की
भागिनी बनजाती हैं।

जिस प्रकार सांसारिक कार्यों में सुयोग्य पत्नीएं सर्व
प्रकार से अपने पति का साथ देती हैं उसी प्रकार धार्मिक
कार्यों में भी यदि पति धर्मपथ से स्खलित होता हो तो

उसकी धर्मपत्नी का मुख्य कर्त्तव्य है कि—वह अपने प्राणप्यारे पति को धर्म मार्ग से पतित न होने दे प्रत्युत उसे सावधान करे जिस प्रकार शब्दालपुत्र श्रावक की धर्मपत्नी श्रीमती अग्निमित्रा भार्या ने अपने प्राणेश को धर्म में स्थिर किया था। उपासकदशांग सूत्र के छठे अध्ययन में इस प्रकार लिखा है यथा—पोलाशपुर नगर में एक शब्दालपुत्र नामक कुम्हार वसता था उसकी नगर से बाहिर पांचसौ दुकानें थीं वह अपनी दुकानों पर या उसके वैतनिक पुरुष नाना प्रकार के राज्यमार्गों में नानाप्रकार के मट्टि के वर्त्तन बेचते थे उसकी अग्निमित्रा नामवाली एक धर्मपत्नी थी जो स्त्रियों के गुणों से सर्वथा विभूषित थी।

परन्तु वह शब्दालपुत्र गोशालाजी के भवितव्यता (होनहार) के सिद्धान्त के माननेवाला था एक दिन उसको श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का समागम मिला उनके साथ उसकी जो होनहार विषय पर वार्तालाप हुई उसमें वह पराजित (हार) हुआ।

फिर उसने श्रीभगवान् के मुख से श्रावक के बारह व्रत और पुरुषार्थ करना यह धर्म धारण करलिया क्योंकि—गोशालाजी पुरुषार्थ धर्म का निषेध करते थे और सर्व क्रियाएं होनहार के ही शिरपर मढ़ते थे परंच श्री भगवान् होनहार को मुख्य न मानकर केवल पुरुषार्थ

के सिद्ध करने से आपका मन्तव्य था कि—जब कर्म कर्ता होने स्वतः सिद्ध हैं तब कर्त्ता की जो स्वतंत्र क्रिया है वही पुरुषार्थ है परन्तु यह पुरुषार्थ होनहार के वश में नहीं है जब केवल होनहार को ही मुख्य माना जाएगा तब तो संसार में न्याय के स्थापन करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है चाहे कोई कुछ करे सब होनहार के ही अधीन माना जाएगा तथा फिर रोगी आदि दुःखों के रोकने के लिये किसी भी उपाय के करने की आवश्यकता नहीं है।

जब कर्मों का फल माना जाएगा तब सर्वथा होनहार का मानना फिर युक्तिसंगत सिद्ध नहीं होता है।

अतएव पुरुषार्थ का मानना न्याय संगत है जब शब्दालपुत्र ने १२ नियम ग्रहण करलिये फिर उसने पन्द्रहवें वर्ष के मध्य में अपने बड़े पुत्र को घर बार का काम समर्पण कर दिया और स्वयं अपनी पौषधशाला में श्रावक की ११ प्रतिज्ञाएँ धारण करके रहने लगा अर्थात् जैन वानप्रस्थ के नियमों को पालने लगगया।

एक दिन शब्दालपुत्र पाक्षिक के दिन पौषध करके धर्मध्यान की समाधि में बैठगया तब कोई मिथ्या दृष्टि देवता आधी रात्रि के समय उसका ध्यान देखने के लिये उसके सामने प्रगट होगया तब देवता ने उसको धर्म से गिराने के लिये बड़े प्रयत्न किए। इतना ही नहीं किन्तु उसने अपनी शक्ति द्वारा उसके सामने उसके

वैक्रियमयी तीनों पुत्रों को भी मारदिया यद्यपि उसके पुत्र जीवित ही थे किन्तु देवशक्ति से उसको यह प्रतीत होता था कि-इसने मेरे पुत्रों को मार दिया है ऐसा होजाने पर भी उसकी आत्मा धर्म पथ से विचलित नहीं हुई तब देवता ने कहाकि—हे शब्दालपुत्र ! यदि तूं अब भी धर्म नहीं छोड़ेगा तब जो तुम्हारी सुख वा दुःख में सहायक और धर्म में भी उद्यम देने वाली अग्निमित्रा भार्या है अब में उस को तुम्हारे घर से लाकर तुम्हारे सामने मारता हूं जब इस प्रकार से कहा गया तब शब्दालपुत्र ने अपने मन में विचार किया कि यह बड़ा अनार्य पुरुष है जिस ने मेरे तीनों पुत्रों को तो मार ही दिया है परन्तु अब मेरी जो दुःख वा सुख में सहायक और धर्म कार्यों में एक मति रखनेवाली अग्निमित्रा भार्या है उस को भी मारना चाहता है।

अब मुझे योग्य है कि-मैं इसे पकडूं पश्चात् जब उस ने धर्म ध्यान की समाधि को छोड़ा तब देवता तो चला गया और उसके हाथ में एक स्तंभ आगया जिसको पकड़ कर बड़े ऊंचे शब्दों से उसने कोलाहल किया उसके कोलाहल के वाक्यों को सुनकर उसकी अग्निमित्रा भार्या जो समीप के ही स्थान में थी शीघ्र आ पहुंची।

उस ने पूछा कि हे प्राणनाथ ! यह क्या कर रहे हो तब उसने सर्व वृत्तान्त कह सुनाया उस वृत्तान्त को

सुनकर अग्निमित्रा ने कहा कि-हे स्वामिन् ! आपके दोनों पुत्र सुखपूर्वक अपनी २ शय्या पर सोए पड़े हैं यह तो कोई कौतूहली देवता आप के धर्म विश्वास की परीक्षा करता होगा जिसमें आप असफल रहकर दृढ़ता पर स्थिर न रह सके।

अतः आप इस समाधि से जो विचलित हुए हैं इस की आलोचना करके प्रायश्चित ग्रहण करें तब उस धर्म-पत्नी ने अपने प्राणप्यारे पति की शुद्धि करके पुनः धर्म में स्थिर कर दिया। जिस का परिणाम यह निकला कि-वह एक जन्म धारण कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

इस कथा का सारांश यह है कि-यदि धर्म मार्ग से पति पतित होता हो तब उस की धर्म पत्नी को योग्य है कि-वह अपने प्राणप्यारे पति को धर्म में स्थिर कर देवे।

हा शोक ! आज कल प्रायः धार्मिक शिक्षाओं के न होने के कारण ही विपरीत कार्य होता हुआ दृष्टि-गोचर हो रहा है और दिनोंदिन धर्म के स्थान पर कुरीतियें बढ़ती जा रही हैं इतना ही नहीं किन्तु धर्म पर अनेक प्रकार से कलंक दिये जा रहे हैं तभी तो देश का अधोपतन हो रहा है।

अतएव सुयोग्य पत्नियों को उचित है कि वे सर्व प्रकार से पति देवता की आज्ञा पालन करती हुई धर्म्म क्रियाओं के करने की और कुरीतियों के हटाने की चेष्टाएं

जैसेकि श्रीभगवती सूत्र के बारहवें शत्तक में लिखा है कि जब शंख श्रावक के भाव पौषध करने के हो गये तब उन्होंने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती उत्पला भार्या से पूंछ कर अपनी पौषधशाला में पौषध करली इस कथन से स्पष्टतया सिद्ध है कि धार्मिक क्रियाओं के करने में भी प्रेम पूर्वक परस्पर सम्मति ग्रहण करनी चाहिये इस रीति से जो धर्म क्रियायें की जाती हैं वे अत्यन्त लाभदायक होती हैं।

जिस प्रकार धर्म पत्नी अपने कर्तव्य का पालन करती है उसी प्रकार पति का भी कर्तव्य है कि वह अपनी धर्म पत्नी को दुःखित न करता हुआ धर्म क्रियाओं में उसकी स्थिरता करे। परस्पर इतनी स्वतन्त्रता भी न होनी चाहिये कि जिस से माता पिता से पृथक् होना पड़े यह काम कुलवन्ती स्त्रियों के लिये लज्जाप्रद है यदि पति और धर्म पत्नी दोनों ही सुयोग्य होंगे तब वे गृहस्थावास के नियमों को ठीक पालन करके धर्म द्वारा अपना कल्याण करने में भी समर्थ हो जायेंगे जैसे आनन्दादि श्रावक और शिवानन्दादि भार्यायें सुगतिगामिनी बन गई हैं इसी प्रकार अन्य गृहस्थ भी सुगति के भागी बनेंगे।

तेरहवां पाठ ।

सेवा धर्म विषय ।

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! आत्म कल्याण करने के लिये तथा अनेक भव्य जीवों को सत्पधर्म में स्थापन करने के लिये अर्थात् मोक्षगमन के लिये केवल सेवा धर्म ही विद्वान् वा अनुभवी लोगों ने प्रतिपादन किया है इसी धर्म द्वारा प्राणी अपना वा पर आत्माओं का उद्धार कर सकता है तथा ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो सेवा धर्म द्वारा सिद्ध न किया जा सके।

अतः इस धर्म का अवलंबन अवश्यमेव करना चाहिए।

गुरु सेवा—प्रथम तो अपने इष्ट देव की आज्ञा पालन करते हुए अपने धर्म गुरुओं की यथाविधि सेवा करनी चाहिए क्योंकि-जो गुरु धन और काम से विरक्त हैं आत्म कल्याण करने वाले हैं उन्हों ने संसारी बंधनों को छोड़ दिया है केवल भ्रमर वृत्ति से आर्य कुलों से भिक्षा मांगकर संयम यात्रा के निर्वाह करने के लिये आहार (भोजन) करते हैं उन की दिनचर्या केवल ज्ञान और ध्यान में ही व्यतीत होती है तथा परोपकार की ही बुद्धि से वे भव्य जीवों को उपदेशामृत का पान कराते हैं सर्वज्ञोक्त शास्त्रों को आप पढ़ते हैं और अन्य जीवों को स्वाध्याय के करने का उपदेश प्रदान करते हैं सब जीवों पर उनका

प्रेम भाव है अतः वे सब जीवों के हितैषी हैं सो पूर्वोक्त गुणों से युक्त गुरुओं की यथोचित सेवा करनी चाहिए। और उन की आज्ञा भक्तिपूर्वक शिरोधार्य करनी चाहिए यदि वे अपने नगर में पधार जाएं तब उन के मुख में सर्वज्ञोक्त उपदेशामृत का पान करना चाहिए उनकी वृत्ति के अनुसार उनकी सेवा में दत्तचित्त होना चाहिए।

माता और पिता-जैसे गुरुओं की सेवा की जाती है उसी प्रकार विनय पूर्वक अपने माता पिता की भी यथोचित विधि से सेवा करनी चाहिए तथा जो बालक और बालिकाएं अपने माता पिता की विधि पूर्वक सेवा करते हैं और उन की आज्ञाओं का पालन करते हैं वे सुयोग्य कोटि में गिने जाने लगते हैं क्योंकि जिन्हों ने अपने माता पिताओं की आज्ञा का पालन किया है वे देश हितैषी वा धर्म की वृद्धि करने वाले कहे जा सकते हैं शास्त्रों में लिखा है कि-माता और पिता का ऋण इतना भारी होता है कि-जो सहज में बालक उसका बदला नहीं दे सकते। हां अपने माता पिता को धर्म में स्थिर करने वाले बालक उस ऋण के उतारने के मार्ग में आ सकते हैं।

फिर माता पिता की सेवा करने वाले बालक और बालिकाएं सांटी सगाति से सदा बचे रहते हैं उसी के माहात्म्य से फिर वे समाज में प्रसिद्धि पाते हैं जब सेवा

र्न पर आत्मा लग गई तब क्लेप का तो मूल से ही नाश किया गया फल इस का यह निकला कि–फिर क्लेप के न होने से लक्ष्मी और धर्म इन दोनों की वृद्धि होने लगी इस लिये माता और पिता की आज्ञा पालन करते हुए अवश्यमेव धर्म में दत्तचित्त हो जाना चाहिए यदि माता और पिता धर्म से पराङ्मुख हों तो उन को धर्म का महत्व दिखला कर धर्म के मार्ग में लगा देना चाहिए। यही सुयोग्य पुत्रों का मुख्य कर्त्तव्य है।

वृद्ध सेवा–माता पिता की सेवा करते हुए जो अपनी जाति में या अन्य जाति में वृद्ध पुरुष हों उनकी यथोचित सेवा करके उनसे धार्मिक शिक्षाएं ग्रहण करनी चाहिएं।

तथा यदि उनको किसी प्रकार का दुःख हो तो उन के दुःख में सहानुभूति करते हुए उन को दुःखों से विमुक्त कर देना चाहिए।

कर्त्तव्य कौमुदी में लिखा है कि-जिन के घर में जवान पुत्र वा प्रपौत्र नहीं है यथा पुत्र वधू अथवा कुटुम्ब में कोई सेवा करने वाला नहीं है ऐसे वृद्ध पुरुष हो वा स्त्री, सब करुणा के पात्र हैं क्योंकि वे निराधार हैं अतः इन का चित्त सदा दुःखादि से संतप्त रहता है इन को द्रव्यादि द्वारा सहायता देकर शांति — प्रदान करना मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है। कई एक वृद्ध ऐसे हैं जो बिना लकड़ी

के सहारे बिल्कुल चल फिर नहीं सकते कई नेत्र-हीन होने से महा दुःखी हैं कितने ही खाट की शरण लेकर दिन गिन रहे हैं और कई एक जरा के प्रहार से जर्जरित होकर अनेक रोगों से पीड़ित हैं ये सब सुख की इच्छा रखने वाले पुण्यवान् पुरुषों की सहायता चाहते हैं अतः दयालु सेवार्थी सज्जनों को उचित है कि-उन वृद्धों की तन मन और धन से यथेष्ट सेवा करें।

वृद्ध सेवा किस प्रकार करनी चाहिए—भाग्यशाली पुरुषों को अवकाश के समय निराधार और दुःखित वृद्ध मनुष्यों के पास बैठकर प्रतिदिन कुशल क्षेम पूछना तथा मीठे वचनों से धैर्य बंधाना चाहिए बिछौने और पहिनने के मैले कुचैले कपड़ों को निकाल कर साफ़ सुथरे कपड़े बदल देना तथा भोजनादि की उचित व्यवस्था करना अत्यावश्यक है और उनके सामने रसीली तथा आत्मा में शांति उत्पन्न करने वाली धार्मिक पुस्तकें पढ़नी चाहियें जिस से उनके परिणाम निर्मल बने रहें तथा वृद्ध मनुष्यों के चित्त में किसी प्रकार की चिन्ता रहती हो तो उस को युक्तियों द्वारा दूर करना चाहिए रोग उत्पन्न होने पर वैद्य की सम्मति से योग्य औषधि की योजना करना तथा प्रकृति में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न होने पर उत्तम शिक्षा और उपदेश द्वारा क्रोध द्वेष विषाद और लोभ का परिहार

शीतल करना चाहिए क्योंकि—रोग का उदय हो जाना किसी के वश की बात नहीं है यह कर्मों की विचित्रता है सो रोगी पर दया भाव करना और उसकी यथा योग्य सेवा करना परमदयालु पुरुषों का मुख्य कर्त्तव्य है तथा जिस प्रकार रोगी के चित्त को शांति आ जावे उसी प्रकार वर्त्तना योग्य है।

जाति सेवा—देशोन्नति या धर्म्मोन्नति उस समय ही उन्नत दशा पर आ सकती है जब कि—जाति सेवा भली प्रकार से होती हो जाति का बल जब सर्वथा सुरक्षित होता है तब हर एक कार्य वृद्धि पाने लग जाता है अतएव जाति के नियमों को भली प्रकार से पालन करते हुए पारस्परिक भेद भाव को मिटा देना चाहिए क्योंकि—व्याकरण संधि प्रकरण में लिखा है कि—जब सवर्णीय स्वर दोनों मिल जाते हैं तब एक प्रथम स्वर दीर्घ हो जाता है इस कथन से यह स्वतः ही सिद्ध है कि-दीर्घता जब भी होगी तब सवर्णीय के मिलने से ही होगी इसलिये भेद भाव को छोड़कर जाति के नियमों को ठीक पालन करते हुए जाति का पूर्णतया संगठन हो जाने पर पश्चात जो कोई भी अनुचित कार्य दृष्टिगोचर हों उन्हें सेवा धर्म द्वारा अवश्य दूर करदेना चाहिए। यदि जाति में कन्या विक्रय होता हो तथा वृद्ध विवाह होता हो वा अनमेल विवाह होता हो तब इन कुरीतियों को

उत्पन्न होने लग जाती हैं तब देश में अविद्या और कदाचार (कुशीलता) के द्वारा जो नूतन से नूतन उपद्रव-खड़े हो जाते हैं। वे सुयोग्य व्यक्तियों द्वारा विद्या और सदाचार की सहायता से दूर हो जाते हैं देश के उपद्रव-धार्मिक शिक्षाओं और सदाचार ग्रहण किये विना सर्वथा दूर नहीं हो सकते अतएव धार्मिक विद्या के प्रचार के लिये देशहितैषियों को योग्य है कि—जिस प्रकार धार्मिक विद्या का प्रचार होवे उसी प्रकार करें-फिर साथ ही जिस प्रकार लोग बुरे आचरणों को छोड़ सदाचारी बनजावें उन्हीं उपायों को ढूंढते रहें।

विधवा की सेवा—इस प्रकार जब धार्मिक विद्या और सदाचार की वृद्धि हो जाएगी तब जो पिछले विश्वासघातादि कठोर कर्मों के भोगने के लिये विधवापन का दुःख स्त्रियों के सन्मुख उपस्थित हो जाता है उन भोली आकृति वाली युवतियों का सदाचार युक्त जीवन व्यतीत होने लगेगा कारण कि--उन अबलाओं को जब किसी प्रकार का भी आधार नहीं रहता तब वे विवश होकर कदाचार युक्त जीवन व्यतीत करने के लिये उद्यत होती हैं। यदि धार्मिक शिक्षाओं द्वारा उनकी जीवनी व्यतीत कराने के लिये सदाचारी पुरुष उद्योग करें तो संभव नहीं कि-- फिर वे कदाचार की ओर झुक सकें।

परन्तु इस कार्य के लिये उन व्यक्तियों की आव-

सकता है जो स्वयं जितेन्द्रिय हों तथा धार्मिक शिक्षाओं से विभूषित हों।

अतएव विधवा आश्रम द्वारा जिस प्रकार विधवाओं का सदाचार युक्त जीवन व्यतीत हो सके उसी प्रकार ऐसे पुरुषों को वर्तना चाहिए।

यह बात विधवाओं के भी ध्यान रखने योग्य है कि वे अपने पिछले किये हुए कर्मों के फल को ठीक समझती हुई कदाचार की ओर पग न रक्खें चाहे कष्ट युक्त ही जीवन क्यों न व्यतीत करना पड़े परन्तु अपने पवित्र उच्च शीलव्रत की सदैव रक्षा करती रहें। जिन की संगति करने से मन में बुरे भाव उत्पन्न होते हों उन स्त्रियों या पुरुषों की संगति को छोड़ देवें।

तथा घरों में रहती हुई किसी सधवा स्त्री के साथ ईर्ष्या भाव न करें और नां ही उन के शृंगारादि देखें नां ही अकेली पराये घरों में भ्रमण किया करें क्योंकि इस प्रकार करने से मन की वृत्ति स्थिर रहनी कठिन सी हो जाती है नां ही मुख से गाली से किसी को संबोधन करके बुलावें। जब उनकी सात्त्विक वृत्ति होगी तब किसी की शक्ति नहीं कि उन की ओर बुरी दृष्टि से देख सके। अतः विधवाओं का धार्मिक जीवन व्यतीत कराने के लिये धर्म प्रेमियों को योग्य है कि वे उन के लिये ऐसी उत्तम के स्थानों को सौंपे जिन से उनका जीवन सुख पूर्वक

व्यतीत हो सके और वे सदा सत्पथके मार्ग पर चलती रहें इतना ही नहीं किन्तु उनके द्वारा देश को धार्मिक शिक्षाओं का भी लाभ पहुंचता रहे विधवाएं भी अपने जीवन पवित्रता से व्यतीत करने के लिये सदा उद्यत रहें।

अनाथ सेवा—जब सेवी पुरुषों ने सदाचार की देश में जागृति कर डाली तब जो अनाथ बालक या बालिकाएं हैं उनकी भी रक्षा करनी उन का मुख्य कर्त्तव्य है क्योंकि वह आत्माएं अपने जीवन से सदा के लिये हाथ धो बैठती हैं उन का सर्व धर्म कर्म उदर पूर्त्ति के लिये एक केवल अन्न ही होता है वर्त्तमान में देखा जाए तो लाखों व्यक्तियें केवल अन्न के ही लिए अपनी जाति और धर्म को छोड़ कर अनार्य पथ में गमन कर रही हैं।

उन व्यक्तियों की यथाशक्ति रक्षा करना भी सेवी पुरुषों का मुख्य कर्तव्य है जिस से वे जाति और धर्म से पतित न हो सकें और अपना जीवन सुख पूर्वक व्यतीत कर सकें उन को विद्या और सदाचार पालन कराने के लिये असीम परिश्रम करने की आवश्यकता है जब वे शिल्प कलाओं को भली प्रकार सीख जाएंगे तभी वे अपना पवित्र जीवन व्यतीत करने के भी समर्थ हो जाएंगे।

उन को अपने धर्म और जाति का भी अभिमान बना रहेगा। जिससे अन्य पुरुषों पर भी उनका अच्छा प्रभाव

रिलोगुत्तमा अरिहंतालोगुत्तमा सिद्धालोगुत्तमा साहूलोगुत्तमा केवलिपएणत्तो धम्मोलोगुत्तमा चत्तारिसरणं पवज्जामि अरिहंतसरणं पवज्जामि सिद्धसरणं पवज्जामि साहुसरणं पवज्जामि केवलिपएणत्तो धम्मोसरणं पवज्जामि। अरिहंतों का शरणा सिद्धों का शरणा साधुओं का शरणा केवलिप्ररूपितधर्म का शरणा चार शरणा दुर्गति का हरणा और शरणा नहीं कोय। जो भवि प्राणी आदरे तो अच्चय अमरपद होय ॥

शब्दार्थ—(चत्तारि) चार (मंगलं) मंगल हैं (अरिहंतामंगलं) अरिहंत मंगल (सिद्धामंगलं) सिद्धमंगल (साहूमंगलं) साधुमंगल (केवलिपएणत्तोधम्मोमंगलं) केवलिप्ररूपित धर्म मंगल (चत्तारिलोगुत्तमा) चार पदार्थ लोक में उत्तम हैं (अरिहंतालोगुत्तमा) अरिहंतलोकोत्तम (सिद्धालोगुत्तमा) सिद्धलोकोत्तम (साहूलोगुत्तमा) साधुलोकोत्तम (केवलिपएणत्तोधम्मोलोगुत्तमा) केवलिप्ररूपितधर्मलोकोत्तम (चत्तारि) चार (सरणं पवज्जामि) शरणों को प्राप्त होता हूं (अरिहंतसरणं

भावना और प्रार्थना पाठ।

प्यारे विद्यार्थियो !

जिस समय आप पाठशाला में पढ़ने आओ तो सब से पहले अपने अपने आसनों पर बैठकर यत्न से श्री सर्वज्ञ प्रभु को नित्यंप्रति नमस्कार करो और फिर बड़े विनीत चित्त से नीचे लिखे अनुसार प्रार्थना करो।

णमोऽत्थुते सिद्धबुद्ध णीरय समण सामाहिय समत्त समजोगि सल्लगत्तणणिब्भय णीरागदोस णिम्ममणिस्संग णीलेव णीसल्ल माणमूरणगुण रयण सील सागरमणंत मप्पमेय भवियधम्मवर चाउरंत चक्कवट्टीणमोऽत्थु ते॥

अर्थ —नमस्कार हो आप को, हे सिद्ध! बुद्ध! कर्म रज से रहित! श्रमण! तपस्विन्! अनाकुलचित्त! कृतकृत्य! हे आप्त! समयोगिन! शल्यकर्तन! निर्भय! रागद्वेष से रहित! निर्ममत्व! असंग! निर्लेप! मान

गुणज्ञ पुरुषों को देखते ही हमारा हृदय विकसित या प्रफुल्लित हो जावे और उन की ही संगति में हम लीन रहें तथा दूसरों के प्रति जो ईर्षा-भाव उत्पन्न होते हैं वे आप की पवित्र शिक्षाओं द्वारा अन्तःकरण से सर्वथा नष्ट हो जावें और उन के स्थान में प्रेम के भाव उत्पन्न होते रहें।

हे अनन्त शक्तिमान्! मैं यह चाहता हूं कि आप के पवित्र जीवन का अनुकरण करूं निर्गुणियों से पृथक् रहकर गुणियों के प्रेम पाश में बंधा रहूं। दुःखित जीवों का आश्रय बनूं उन के दुःख निवारण करने में सदा तत्पर रहूं दुःखियों के आर्त्तनाद को सुनकर मेरा हृदय करुणा- . से आर्द्र हो जावे जिस से उन की यथा-शक्ति सहा- ...। या सेवा करने के लिये उद्यत हो सकूं। हे प्रभो! मेरी आकांक्षा है कि मेरी प्रत्येक संसारी जीव से मैत्री बनी रहे। दया के बीज मेरे हृदय में अंकुरित हो जावें से मैं प्राणी-मात्र के साथ सहानुभूति कर सकूं। अन्तःकरण की यह उत्कृष्ट भावना है कि आप की . शिक्षाओं के वशीभूत हो कर मैं स्वयं प्रेममूर्त्ति बनूं और जगद्वासी अन्य जीवों को भी प्रेममूर्त्ति बनाने में समर्थ हो जाऊं।

हे भगवन्! निन्दा स्तुति संसार का स्वभाव ही है। मेरे में इस प्रकार की सहनशक्ति हो जिस से मैं निन्दा

लगी रहे। मेरा जीवन सद्गुणों से अलंकृत होकर जगत्-वासी जीवों के लिये आदर्शरूप बने यही अन्तःकरण में मेरे भाव रहते हैं। अतएव हे जिनेन्द्र ! आप संसार समुद्र से जीवों को पार करने वाले हैं, अतः मेरे पर भी कृपा कीजिये। जिस प्रकार गोप एक दण्ड से सर्व गोवर्ग की रक्षा करता है उसी प्रकार आप हमारी भी धर्म दण्ड से रक्षा कीजिये। तथा जिस प्रकार गोप दण्ड से गोवर्ग की रक्षा करता हुआ उस वर्ग को वाड़े में पहुंचाता है उसी प्रकार आप हमारी रक्षा करते हुए हमें मोक्षद्वार में प्रविष्ट कीजिये हे जिनेश ! हमें निर्मल ज्ञान (सद्विद्या) प्राप्त हो जिस से अन्य प्राणियों में भी हम उस ज्ञान द्वारा प्रकाश कर सकें। हमें परम समाधि दीजिये जिस से हम अक्षयसुख को उपलब्ध कर सकें, तथा हे परमात्मन् ! आप हमारे हृदय में ज्ञान द्वारा व्यापक होते हुए हमारी आत्मा में प्रकाशमान हूजिये जिस से हमको सम्यक्ज्ञान की प्राप्ति हो और प्रत्येक प्राणी के हित करने में समर्थ हो जावें। हमें सद्विद्या का दान दीजिये जिस के बल से फिर हम प्रत्येक प्राणी के दुःख निवृत्त करने में समर्थ हो जावें।

लोगस्सउज्जोयगरे धम्मतित्थयरेजिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं चउवीसंपिकेवली॥१॥

उसभमजियंचवंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणंच चंदप्पहंवंदे ॥२॥
सुविहिंचपुप्फदंतंसीअलसिज्जंसंवासुपुज्जं च।
विमलमणंतंचजिणं धम्मंसंतिंचवंदामि ॥३॥
कुंथुंअरंचमल्लिं वंदे मुणिसुव्वयं नमि जिणंच।
वंदामि अरिट्ठनेमिपासं तह वद्धमाणं च ॥४॥
एवंमएअभिथुआ विहुय रय मला पहीण जर-
मरणा चउवीसंपिजिणवरातित्थयरा मे पसीयंतु ५
कित्तिय वंदिय महिया जे ए लोगस्स उत्तमा।
सिद्धा आरोग्गबोहिलाभं समाहिवरमुत्तमंदिंतु ६
चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियंपया।
सयरा सागरवरगम्भीरा सिद्धासिद्धिंममदिसंतु ७

हिन्दी पदार्थ—लोक के विषय उद्योत करने वाले धर्म रूपी तीर्थ के स्थापन करने वाले राग द्वेष के जय कर्त्ता ऐसे जो केवल ज्ञान के धारक श्री अरिहंत हैं तिन की कीर्ति वा स्तुति करता हूं ॥ १ ॥ ऋषभदेव जी को अजितनाथजी को वन्दना करता हूं संभवनाथजी को अभिनन्दननाथजी को और सुमतिनाथजी को श्रीपद्मप्रभु-स्वामीजी को श्रीसुपार्श्वनाथजी को राग द्वेष के जीतने

वाले चन्द्रप्रभुजी को वन्दना करता हूं ॥ २ ॥ नाथजी को पुनः इनका द्वितीय नाम पुष्पदन्तजी को शीतलनाथजी को श्रेयांसनाथजी को वासुपूज्यस्वामीजी को विमलनाथजी को अनन्तनाथजी को रागद्वेष के जीतने वाले धर्मनाथजी को शान्तिनाथजी को वन्दना करता हूं ॥ ३ ॥ कुंथुनाथजी को अरनाथजी को और मल्लिनाथजी को वंदना करता हूं मुनि सुव्रत स्वामी जी को नमीनाथजी को राग द्वेष के जीतने वाले अरिष्ट-नेमिजी को पार्श्वनाथजी को तथा वर्द्धमानस्वामीजी को अर्थात् श्री महावीर जी को वन्दना करता हूं ॥ ४ ॥ इस प्रकार से मैंने अरिहंतों की स्तुति की है। अरिहंत कैसे हैं जिन्होंने दूर करी है कर्मों की रज तथा मल फिर क्षय किया है जरा और मृत्यु ऐसे जो चतुर्विंशति तीर्थ-कर वा अन्य केवली भगवान् हैं वे सर्व जिनवर वा सर्व तीर्थंकर देव मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ५ ॥ श्रीतीर्थंकर देव कीर्त्तित वंदित और पूज्य हैं, जो प्रत्यक्ष लोग में उत्तम सिद्ध हैं वह मुझ को रोग रहित निर्मल सिद्ध भाव वा बोध बीज सम्यक्त्व का लाभ और उत्तम समाधि जो प्रधान है सो मुझ को दें ॥ ६ ॥ क्योंकि आप चन्द्रमा से अधिक निर्मल और सूर्य से भी अत्यन्त प्रकाश करने वाले हो प्रधान सागर की तरह गुणों में गम्भीर हैं सो हे सिद्धो ! मुझको मुक्ति प्रदान करो।

॥ इति शुभम् ॥